योगविद्या

वर्ष 6 अंक 12
दिसम्बर 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥9.27॥

अर्थ–हे अर्जुन! तुम जो कर्म करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो दान देते हो और जो तप करते हो, वह सब मुझे अर्पण कर दो।

जो इस श्लोक के भाव को समझकर तदनुसार जीवन जीने का प्रयास करता है, वह अवश्य ईश्वर के प्रति समर्पण कर पाता है। उसका लोभी स्वभाव धीरे-धीरे विलीन हो जाता है। वह कभी लेता नहीं, केवल देता ही है। उसका समस्त जीवन मनसा-वाचा-कर्मणा ईश्वर को समर्पित हो जाता है।

उसमें लेशमात्र भी अहंकार नहीं रहता और उसके स्वभाव में दिव्यता का अवतरण होता है। उसकी इच्छा इश्वरेच्छा से एकाकार हो जाती है। यह योग का सबसे सरल साधन है।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 12 · दिसम्बर 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

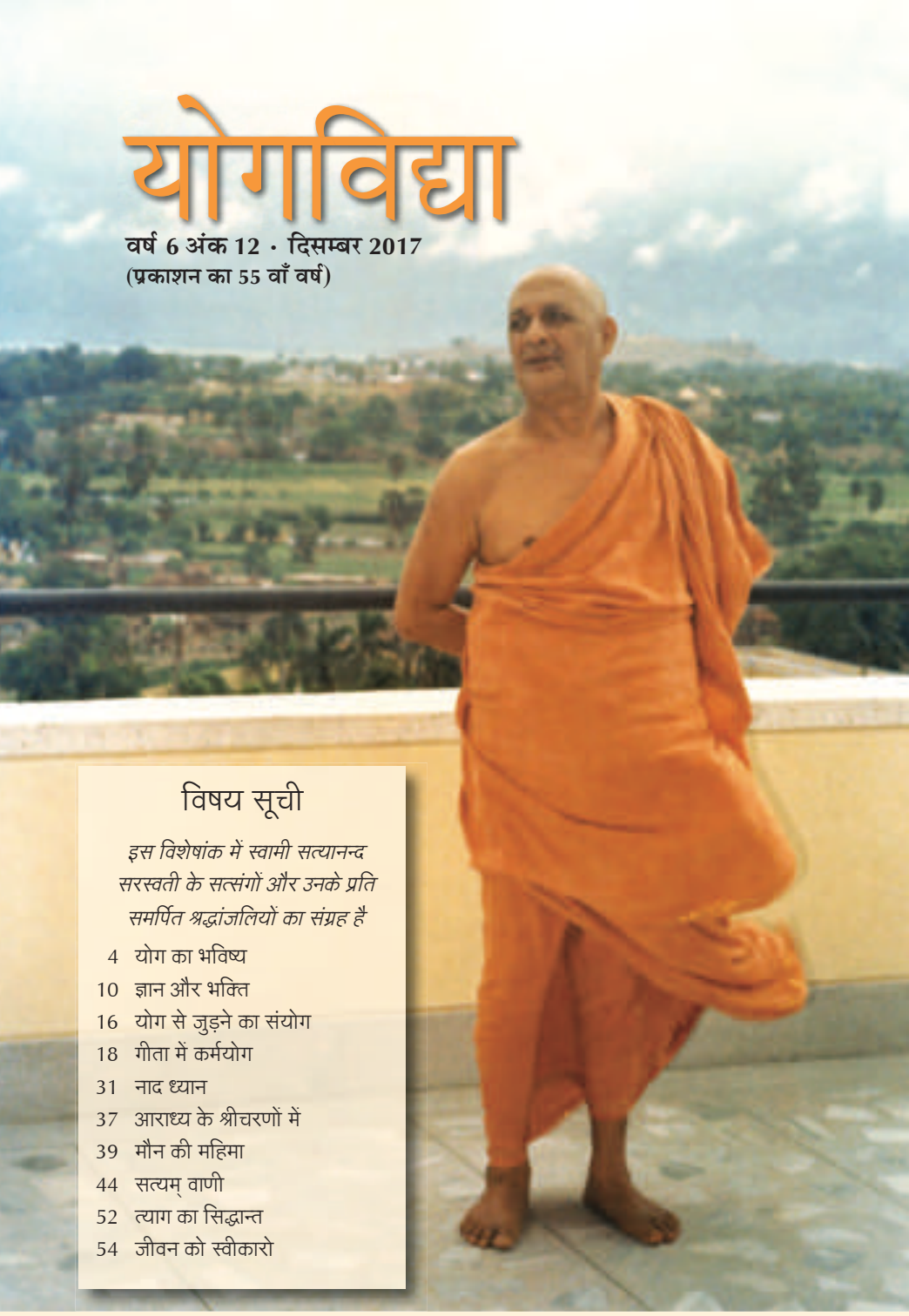

विषय सूची

इस विशेषांक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 योग का भविष्य
10 ज्ञान और भक्ति
16 योग से जुड़ने का संयोग
18 गीता में कर्मयोग
31 नाद ध्यान
37 आराध्य के श्रीचरणों में
39 मौन की महिमा
44 सत्यम् वाणी
52 त्याग का सिद्धान्त
54 जीवन को स्वीकारो

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योग का भविष्य

अगली शताब्दी में योग बहुत लाभकारी पेशा बनने वाला है। आने वाले युग में जो पेशा लाभदायक नहीं होगा, जो विद्या अर्थकरी नहीं होगी, वह जीवित नहीं रह सकेगी, चाहे वह संस्कृत हो या अंग्रेजी हो या विज्ञान हो। जैसे कि इन्जिनीयरिंग या डॉक्टरी आज के बढ़िया पेशे हैं, वैसे ही योग अगली शताब्दी का पेशा होगा। यह केवल एक शैक्षणिक विषय के रूप में नहीं रहेगा। योग में बी.ए., एम.ए. की डिग्रियाँ तो मिल ही रही हैं और योग शिक्षा में अभी बहुत विकास भी वांछित है। लेकिन मैं उस पक्ष की बात कर रहा हूँ जिस पक्ष के लिए आज सारी दुनिया पढ़ती और नौकरी करती है।

कोई भी आदमी क्या सिर्फ ज्ञान के लिए पढ़ता है? नहीं। यथार्थ पर चलो, आखिर क्यों पढ़ते हो, क्यों नौकरी करते हो? पैसा कमाने के लिए। इसलिए आज हर पेशे का लाभकारी होना जरूरी है। चाहे वकालत हो, चिकित्सा हो या शिक्षण हो। योग में भी ऐसा होगा। सब लोगों की यही राय है और अंदाज भी ऐसा ही लगता है, क्योंकि अभी तक हिन्दुस्तान में जो बीमारियाँ होती थीं, वे गंदा पानी पीने या गंदा खाना खाने से होती थीं। मगर आने वाली शताब्दी में ये बीमारियाँ गंदे पानी से नहीं, बल्कि तनाव या परेशानी से होंगी। यही आज अमेरिका, इंग्लैण्ड और जापान में हो रहा है। बम्बई, बंगलौर और दिल्ली जैसे बड़े शहरों में भी हो रहा है।

तनाव जनित रोग

स्ट्रेस का मतलब होता है दबाव। दबाव क्या है? लड़के को पढ़ाना है, उसकी फीस के लिए पैसा चाहिए। रिक्शा समय पर नहीं आया, क्यों नहीं आया? साढ़े चार बज गए, पर लड़की लौटी नहीं, क्यों नहीं लौटी? आजकल समाज की स्थिति खराब हो गई है, कहीं गड़बड़ तो नहीं हो गई। पति आज आठे बजे तक नहीं आया, कहीं क्लब तो नहीं गया। ये तनाव हैं और ये एक-आध नहीं, बल्कि आपके हर एक कदम पर आने वाले हैं।

गाँव में वैसा तनाव नहीं है। गाँव में तनाव ज्यादातर शारीरिक है। लेकिन अब मानसिक तनाव भी आने वाला है। यह सफेद बाल वालों के लिए नहीं, बल्कि जो नई पीढ़ी आने वाली है उसकी बात बोल रहा हूँ। तनाव से कोई खास बीमारी पैदा नहीं होती, बल्कि किसी भी तरह की बीमारी हो सकती है। तनाव का असर गुर्दे पर पड़ सकता है, अग्नाशय, हृदय, फेफड़े या पाचन तंत्र पर पड़ सकता है। तुम्हारे शरीर में जो अंग कमजोर होगा, तनाव से वहाँ चोट लगेगी।

योग और संन्यास

तनाव के लिए कोई दवा नहीं है सिवाय योग के। अगर कोई उपाय है तो वह योग ही है। लोगों ने तनाव को दूर करने के लिए बहुत-से दूसरे उपाय निकाले हैं, शराब भी पीते हैं, कई प्रकार के खेल खेलते हैं, पहाड़ों में घूमने जाते हैं, समुद्र-विहार और वन-विहार के लिए जाते हैं, मगर वे उपाय थोड़ी देर के लिए ही कारगर होते हैं। घर में वापस आते हैं तो तनाव फिर शुरू हो जाता है। इसलिए हम कहते हैं कि आने वाले समय में योग की माँग बहुत जबरदस्त होगी।

दूसरी चीज जो हम स्पष्ट देखते हैं, वह है आने वाले समय में संन्यासियों की भूमिका। संन्यास और संन्यासियों के बारे में हमने अपने घरवालों के मुख से

थोड़ा-बहुत ही सुना था। स्वामी दयानन्द, स्वामी प्रणवानन्द और आनन्दमयी माँ का नाम सुना और उनके दर्शन भी किये, पर उस समय संन्यासियों की माँग नहीं थी। समाज भी यही सोचता था कि संन्यासी से हमें मिलेगा क्या? समाज को संन्यासी की क्या जरूरत है? ठीक है, आनन्दमयी माँ की तरह दो-चार अच्छे संन्यासी हुए तो आशीर्वाद दे दिया कि तुमको बेटा हो जाय। पर आज का समाज तनाव पर चल रहा है और जिस तरह समाज भ्रष्ट बनता जा रहा है, लोग समझते हैं कि उनका बेटा साधु ही बने तो अच्छा है। तुम अपने बेटे को चोर बनाना चाहोगे क्या? अगर वह स्वामी निरंजन की तरह अच्छा बने तो क्या हर्ज है? आखिर तुम सब को एक अच्छा बेटा या अच्छी बेटी ही तो चाहिए।

आने वाले जमाने में दो चीजों की बहुत माँग होगी—पहला, योग और दूसरा, संन्यासी। पिछले पचास-साठ सालों में मैंने देखा है कि संन्यासी की माँग बढ़ती ही जा रही है। जैसे-जैसे स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ जैसे संन्यासियों का नाम फैला, माँग बढ़ती गई। हमारे समय में तो शंकराचार्य जी का नाम भी कोई नहीं जानता था। अब तो सब जानते हैं, क्योंकि समाज एक ऐसे व्यक्तित्व की प्रतीक्षा में है जो उनके बच्चों के लिए आदर्श बन सके। अगर इन बच्चों में कोई बाद में संन्यासी बनना चाहेंगे तो हम समझेंगे कि *'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था'* — तुम्हारा कुल पवित्र हो गया, तुम्हारी माता कृतार्थ हो गई। सिर मुड़ाकर आओ, घर नहीं जाना, गुरुजी के पास रहना, भाई-बहन-भतीजे से दूर रहना। किसी से कोई पक्षपात नहीं। अलग रहना, अकेले रहना, अलख निरंजन। गुरुजी कहें कि योग सिखाओ तो योग सिखाना, गुरुजी बोलें अस्पताल खोलो तो खोल देना। मगर जो भी करो अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए।

लोकसंग्रह

जो आदमी अपने लिए जीता है, वह गृहस्थ है। जो दूसरे के लिए जीता है, वह संन्यासी है। गीता कहती है, *'लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि'*—वह लोकसंग्रह के लिए जीता है। रिखिया में जो कार्य हो रहा है, जिसको आधुनिक भाषा में समाज सेवा कहते हैं, तुम अगर भारतीय वैदिक परम्परा के अनुसार नाम देना चाहो तो इसको लोकसंग्रह कहते हैं। स्वामी विवेकानन्दजी लोकसंग्रह की ही बात कहते थे। लोकसंग्रह का मतलब हुआ कि तुम दूसरों के लिए जी रहे हो। तुम्हारे इस शरीर पर, तुम्हारी कमाई पर, तुम्हारी सम्पत्ति पर केवल तुम्हारा अधिकार नहीं है, दूसरों का भी अधिकार है। गीता कहती है कि जो अपनी सम्पत्ति पर केवल अपना एकाधिकार समझे, वह चोर है।

अगली शताब्दी में योग का सामाजिक महत्त्व भी होगा। इसका शैक्षणिक महत्त्व तो है ही। हमेशा से रहा है, क्योंकि योग दर्शन-शास्त्र है। योग दर्शन भारतीय

दर्शनों में से एक है और अन्य दर्शनों का भी आधार है। जैनों और बौद्धों में भी योग दर्शन है। जैन परम्परा में भी कुण्डलिनी शक्ति है, आसन हैं, ध्यान की क्रियाएँ हैं, अजपाजप है। बौद्ध दर्शन में भी योग की क्रियाएँ हैं। इन सब दर्शनों का आधार योग दर्शन है।

हिन्दुस्तान में जहाँ-जहाँ भी योगाश्रम हैं, सब बहुत लोकप्रिय हैं, भले ही उनमें से अधिकतर योग को पूर्णरूपेण समर्पित न हों। वहाँ बहुत लोग आते-जाते हैं, बाकी सब आश्रम ठण्ढे पड़े हैं। वहाँ कोई आता-जाता नहीं। वे लोग उनको धर्मशाला की तरह चलाते हैं। मथुरा-वृन्दावन में जो लोग आश्रम बनाकर बस गए, वहाँ भी अब ताला लग गया है। गुरुजी चले गए, मनमौजी चेले हैं, कोई देखनेवाला नहीं। आवासीय योगाश्रम भारत में नहीं के बराबर हैं। जैसा मुंगेर का आश्रम है, वैसा कहीं पर भी नहीं है। चार-पाँच सौ लोग जहाँ रह सकें, ऐसी व्यवस्था और कहीं नहीं है। जैसे मधुमक्खियों का छत्ता होता है, जहाँ मधुमक्खियाँ हमेशा गुंजन करती रहती हैं, वैसा मुंगेर आश्रम है।

योग के प्रति निष्ठा और एकचित्तता

योग में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि लक्ष्य स्पष्ट रहे। सन् 1964 की बात है, जब मैं मुंगेर में था। उस समय गंगादर्शन आश्रम नहीं था, केवल पुराना शिवानन्द आश्रम था। उसमें केवल चार छोटे-छोटे कमरे थे, एक हॉल था, जिसमें योग की कक्षाएँ होती थीं, एक मेरा कमरा था और एक छोटा-सा रसोईघर। बस इतना ही था आश्रम और उसमें करीब बीस-पचीस लोग रहते थे। दिन में वे सब अपना सामान चार कमरों में डाल देते थे, हॉल में कक्षा होती थी और रात में वहाँ सब पुआल बिछाकर, बिस्तर लगा कर सो जाते थे।

मुंगेर में एक सज्जन थे, जो प्राकृतिक चिकित्सा करते थे और मेरे पास आते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि आप योग के साथ कुछ नैचुरोपैथी भी जोड़ दीजिए, बड़ा लोकप्रिय होगा। पर मैं तो अर्जुन का चेला हूँ, न भीम का, न ही दुर्योधन का। मुझे तो केवल चिड़िया की आँख ही दिखाई देती है। योग मेरी खोपड़ी में घुस गया था, सनक बन गया था। वैसे मेरे को होम्योपैथी की जानकारी है, एलोपैथी भी जानता हूँ। मुझे सारी दवाइयाँ मालूम हैं। मैं तो सर्जरी भी कर सकता हूँ। लेकिन मैंने उसको भी छोड़ दिया, होम्योपैथी और यूनानी चिकित्सा को भी छोड़ दिया, केवल योग को पकड़ा।

अगर आदमी एकचित्त रहे तो सब कुछ कर सकता है। योग पर तुम एकचित्त तभी होगे जब तुम्हें मालूम पड़ेगा कि आवश्यकता योग की है। हमें सन् 1968 में मालूम पड़ गया कि आवश्यकता योग की है। उस साल मैंने भारत की सीमा पार की, तीन दिन सिंगापुर में रहा, ऑस्ट्रेलिया में चार-पाँच दिन रहा। उसके बाद होनोलुलू होते हुए जैसे ही मैंने अमेरिका के सैनफ्रैन्सिस्को शहर में कदम रखा, मुझे एक किस्म की गंध आने लगी। मैं उस सुगंध से भाँप गया कि यह योग का मौसम है। तुम वेदान्त की बात छोड़ो, भक्ति की बात छोड़ो, ज्ञान की बात छोड़ो, खाली आसन-प्राणायाम और बीमारी की बात करो, सफलता मिलेगी। वही हुआ भी।

योग इस युग की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है, कहीं पर भी देख लो। हिन्दुस्तान में तो अभी ऐसा हुआ नहीं है, लेकिन अनेक देशों में जगह-जगह पर योग केन्द्र हैं। जैसे यहाँ नुक्कड़-नुक्कड़

पर पान-बीड़ी-सिगरेट की दुकान होती है, वैसे वहाँ योग की दुकाने हैं। लोग सबेरे वहाँ जाते हैं, आसन-प्राणायाम करते हैं और बीस-पचीस डॉलर देकर आ जाते हैं। योग का काम अच्छा है, इसे यहाँ भी ठीक ढंग से चलाना होगा।

अब हिन्दुस्तान में योग के साथ एक और चीज जोड़नी पड़ेगी, लोकसंग्रह। गरीब तो हिन्दुस्तान पहले भी था, मगर चूँकि शिक्षा नहीं थी इसलिए गरीबी महसूस नहीं कर पाते थे। अब समाज पढ़-लिख गया है, सब चीजों के बारे में उसे जानकारी हो गई है, इसलिए गरीबी और अभाव महसूस करने लग गया है। 'मेरी लड़की या लड़का पढ़ नहीं पाता है। फीस, किताब और वर्दी कहाँ से आएगी? लड़की पढ़ने के लिए कैसे देवघर जाएगी?' अब ये सब बातें लोगों के मन में आने लग गई हैं।

हिन्दुस्तान में पिछले दो-तीन सौ सालों में जो सबसे बड़ा अभाव हुआ है, वह है सामाजिक संस्थाओं का। एक संस्था तो परिवार है और दूसरी संस्था होती है सरकार। पर इन दोनों के बीच एक संस्था होती है जिसको सामाजिक संस्था कहते हैं। मानव अधिकार संघ, व्यापार संघ, संगीत संगम, इस तरह की अनेक छोटी-छोटी संस्थाएँ शहरों में होती हैं। उनका अभाव हो गया है। यही संस्थाएँ सामाजिक चर्चा को जन्म देती हैं, चाहे वह दर्शनशास्त्र पर हो, या अर्थशास्त्र, चिकित्सा, शिक्षा अथवा भ्रष्टाचार पर हो। जन-चर्चा से समाज की एक आवाज बनती है और उसी आधार पर फिर सरकार काम करती है।

अभी तो सरकार को अपनी मर्जी से काम करना पड़ रहा है। समाज की कोई आवाज नहीं, क्योंकि पिछले दो सौ सालों में कोई सामाजिक संस्था नहीं रही। अंग्रेजों ने सबसे बड़ा नुकसान यही किया। अब रईसों का कोई क्लब है, वह समाज की आवाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता। संगीत, नृत्य, साहित्य, कविता आदि के बारे में जो छोटी-छोटी संस्थाएँ होती हैं, वे ही बाद में जनता की आवाज को जन्म देती हैं, एक सामाजिक राय बनाती हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि हर एक आदमी को प्रकाश बनना होगा। योग के साथ इसे भी जोड़ना पड़ेगा, पर केवल भारत में, विदेश में इसकी जरूरत नहीं। अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, जापान या कोरिया में लोकसंग्रह प्राथमिक नहीं है, क्योंकि वहाँ समाज को संभालने वाली संस्थाएँ हैं। कोई अनाथ है, बीमार है, लूला-लंगड़ा है, गरीब है, पढ़ता नहीं है, चोर है, उनको वे संभाल लेते हैं। यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ सारी जिम्मेदारी सरकार के ऊपर पड़ती है। इसीलिए सरकार नाकामयाब हो रही है। यहाँ सब चीजें सरकार को संभालनी पड़ती हैं। पढ़े-लिखे लोगों को योग पर अच्छी तरह से चिन्तन कर उसे समाज के लिए उपयोगी बनाने के उपाय खोजने चाहिए।

– 4 जुलाई 1999, रिखियापीठ

ज्ञान और भक्ति

ज्ञान के मार्ग में मन ही बाधक और मन ही साधक है। अत: पहले मन को साधना है। साधने के इस मार्ग में श्रद्धा सर्वोपरि है। श्रद्धा का केन्द्र अनित्य पदार्थ नहीं है। अनित्य वस्तु के प्रति श्रद्धा सच्ची, कल्याणकारी और सुन्दर नहीं हो सकती। श्रद्धा का केन्द्र वही हो सकता है, जो नित्य हो, सर्वव्यापक हो, सर्वश्रेष्ठ हो, सर्वकलासम्पन्न हो और साक्षात् 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' तथा अब तक अदृष्ट हो। श्रद्धा का एकमेव आधार ईश्वर या ब्रह्म या आत्मा है, क्योंकि वह अपने से भिन्न नहीं है।

समस्त विश्व के पीछे एक सत्ता काम कर रही है। उसी सत्ता को ब्रह्म कहते हैं। यद्यपि वह सत्ता दिखलायी नहीं देती, परन्तु प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति उस अपार सत्ता का अनुमान लगा सकता है। सामवेदीय केनोपनिषद् के प्रथम खण्ड में बड़े विस्तार से इस सत्य का प्रतिपादन किया गया है।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदैव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥4॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥5॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥6॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिद्ँश्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥7॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥8॥

अर्थात् जो वाणी के द्वारा नहीं बतलाया गया है, बल्कि जिससे वाणी बोली जाती है, उसको ही तू ब्रह्म जान। वाणी द्वारा बताने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। जिसको कोई मन से नहीं समझ सकता, बल्कि जिससे मन की गति जानी जाती है, उसको ही तू ब्रह्म जान। मन और बुद्धि के द्वारा जानने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। जिसको कोई चक्षु के द्वारा नहीं देख सकता, बल्कि जिससे चक्षु अपने विषयों को देखता है, उसको ही तू ब्रह्म जान। चक्षु के द्वारा देखने में आने वाले जिस दृश्य वर्ग की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। जिसको कोई श्रोत्र के द्वारा नहीं सुन सकता, बल्कि जिससे यह श्रोत्र-इन्द्रिय सुनती है,

उसको ही तू ब्रह्म जान। श्रोत्र-इन्द्रिय के द्वारा जानने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। जो प्राण के द्वारा चेष्टायुक्त नहीं होता, बल्कि जिससे प्राण चेष्टायुक्त होता है, उसको ही तू ब्रह्म जान। प्राणों की शक्ति से चेष्टायुक्त दिखने वाले जिस तत्त्व समुदाय की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। गीता में भी लिखा है–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ 18.61 ॥

अर्थात् सब प्राणियों के हृदय में बसकर ईश्वर सभी जीवों को यन्त्रारूढ कर माया से घुमाता है। वह सत्ता एकदेशीय है या सर्वव्यापक, एक है या अनेक–ये प्रश्न तो सन्तों ने स्वानुभूति के द्वारा हल कर दिए हैं। मैं समझता हूँ कि हमें अब खोज करनी है ही नहीं। अनन्त की खोज करना या न करना बराबर। जब उसकी खोज पूरी हो ही गई, तो वह अनन्त रहा कहाँ?

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥

क्या ही सुन्दर है अनन्त का स्वात्मा में दर्शन! *जब दुई का पर्दा दिल से हट गया, तब अनलहक कह उठे तो जुर्म ही क्या!* साधक अपने भीतर अनन्त की अपरोक्षानुभूति करता है–

यह देख गगन मुझमें लय है
यह देख पवन मुझमें लय है।
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है संसार सकल ॥
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें
उदयाचल मेरा दीप्त भाल,
भूमण्डल वक्षस्थल विशाल ॥
भुज परिधि सिन्धु को घेरे हैं
मैनाक मेरु पग मेरे हैं।
दिखते जो ग्रह-नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर ॥

जीवन की प्रत्येक गति का संचालन एक ऐसी अदृश्य शक्ति द्वारा हो रहा है, जिसे कोई नहीं देख पा रहा है, पर जो

सबके अन्दर व्याप्त होकर सबका नियन्त्रण, नियमन और संचालन कर रही है। परन्तु प्रकृति या ब्रह्म के द्वारा कराये गए कामों को मूर्ख लोग 'इसका कर्त्ता मैं हूँ', ऐसा समझ लेते हैं। सच्चा भाव है– *त्वया हृषिकेश हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽसि तथा करोमि।*

बचपने की वजह से मैं कभी स्वयं को कर्त्ता मानता था। पर आज मुझमें वह हिम्मत नहीं कि अपने बूते पर कुछ घमण्ड करूँ। मैं तुमसे भी यह निवेदन करूँगा कि अपने अहं के पाखण्ड को हटा दो। नित्य यही भाव रखकर प्रार्थना करो– Take my will and make it thine, it shall no longer be mine. जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक तुम्हें प्रभु-कृपा मिलेगी कैसे?

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥16.18॥

ऐसे लोग तो देव-द्वेषी ही रहा करते हैं। अच्छा तो यही होगा कि

आईना-ए-दिल साफ करो खाके खुदी से ।
रुख इसके वजूद अपना दिखाया नहीं करते ॥

मोह से ही दु:खों की उत्पत्ति होती है। इच्छा की पूर्ति को सुख और अपूर्ति को दु:ख कहते हैं। इसी कारण इच्छा, याने विषय के प्रति मोह का त्याग करना पड़ता है, क्योंकि नित्य संन्यासी वही है, जिसमें न द्वेष हो, न इच्छा। ऐसा ही व्यक्ति सरलतया द्वन्द्वों को त्यागकर सर्व-बन्धनमुक्त होता है।

जब तक मनुष्य तीन गुणों का अतिक्रमण कर त्रिगुणातीत एवं अव्यय तत्त्व को प्राप्त नहीं करता, तब तक भटकता ही रहता है। त्रिगुणों में आसक्ति अज्ञान के कारण होती है। जब चिर-अभिलषित आशाओं की पूर्ति नहीं होती, तब चित्त विक्षिप्त हो जाता है। ऐसे अवसर पर व्यक्ति का स्वभाव भयंकर हो जाता है। इसीलिए सन्तों ने स्व-इच्छा-रहित हो जाने की आज्ञा दी है।

मालिक तेरी रजा रहे, और तू ही तू रहे ।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे ॥

इच्छारहित होने के लिए सन्तोष चाहिए, क्योंकि– *बिनु सन्तोष न काम नसाहीं, काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।* और भी– *कीट मनोरथ दारु सरीरा, जेहि न लाग घुन को अस धीरा।* अत: तुम्हें मनोरथ प्रवृत्ति को जीतकर निष्काम सिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए। अपने सामने घटने वाली आकस्मिक जीवन-मौत और सुख-दु:ख की घटनाएँ नयन-अंजन हैं। इनसे दिव्य दृष्टि खुलने लगती है। सार-असार का ज्ञान होने लगता है, सहानुभूति की मात्रा बढ़ने लगती है, और मुक्ति का मार्ग निरवरोध हो जाता है।

मैं पहले भी कह चुका हूँ, और अब भी कह रहा हूँ कि परमानन्द चाहिए तो जीवन के प्रत्येक पहलू में केवल आनन्द की खोज करो। कस्तूरी चाहते हो तो कस्तूरी खोजो। बेकार लहसुन पर क्यों नाक-भौं सिकोड़ते हो! परन्तु मूर्ख मनुष्य प्राप्त सुख से असन्तुष्ट तथा अप्राप्त सुख के लिए लालायित और पागल रहता है। इसे ही जीव का बन्धन जानो। समतल जीवन का नाम जीवन नहीं, बल्कि उतार-चढ़ाव का नाम ही जीवन है। ऐसा न सोचो कि जीवन में सदा एकरसता रहेगी। सुख-दु:ख, जीवन-मरण और संघर्ष का नाम है जीवन।

यह साँझ उषा का आँगन, आलिंगन विरह-मिलन का ।
चिर हास-अश्रुमय आनन रे, इस मानव जीवन का ॥

और भी–

यह जीवन क्या है, निर्झर है, मस्ती ही इसका पानी है।
सुख-दु:ख के दोनों तीरों से, चल रहा राह मनमानी है ॥
प्रभु की रहस्यमय इच्छा का, कुछ भेद नहीं पा सकता हूँ।
सुख-दु:ख की चिन्ता छोड़ सदा, उसमें ही मैं लय रहता हूँ ॥

अत: महामाया की प्रत्येक कृपा के सामने नमस्कार और हर अनुग्रह को सिरमाथे स्वीकार करना पड़ेगा। हम अल्पज्ञ मानव यह नहीं जानते कि अखण्ड

और कल्याणकारी सुख है कहाँ। महामाया जानती है कि किस अनुग्रह से जीव का कल्याण होगा। अत: अल्पज्ञ जीव को सदैव देव की शरण में जाना ही चाहिए। केवल ईश्वर ही सर्वज्ञ है, शेष सभी अल्पज्ञ हैं। और जब तक ज्ञान, वैराग्य, विवेक, भक्ति और निष्काम कर्मयोग द्वारा जीव-ग्रन्थि नहीं छूटती, तब तक ईश्वरत्व और सर्वज्ञता का अवतार नहीं हो सकता।

जब से अल्पज्ञ जीव के ध्यान और प्रेम, आकर्षण और रुचि का लक्ष्य सर्वज्ञ ईश्वर बन जाता है, तब से ही दु:खों और अभावों की मान्यताएँ तिरोहित हो जाती हैं, क्योंकि ईश्वर के प्रति अनुराग का होना तमाम बन्धनों का अन्त है। जहाँ प्रभु के प्रति अनुराग नहीं, वहाँ– *योग कुयोग ज्ञान अज्ञान, जहँ नहिं राम प्रेम प्रधान।* इसलिए सन्त कहते हैं– *रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि लेहु जे जान निहारा।*

सांसारिक राग तो क्षणिक है, असन्तोष और कल्मष का जनक है। दुनिया का आशिक बनकर आज तक कोई भला आदमी सुखी नहीं हुआ। मुझे जौक की दो पंक्तियाँ याद पड़ रही हैं–

ऐ जौक गर है होश तो दुनिया से दूर भाग।
इस मैकदे में काम नहीं होशियार का॥

जिनके मन में फल की आशा है, कामना है, अतृप्त भाव है, छिछले अरमान हैं और आकाशविहारी मनोयान हैं, वे त्रिलोक भर की सम्पत्ति और सुख पा लेने पर भी असन्तुष्ट और हारे ही रहते हैं। समस्त भावनाओं के प्रवाह को ईश्वर की ओर मोड़ कर ही जीव सुखी और सफल बन सकता है। यह तो हुआ मूल भाव। साथ-साथ यह भी समझ लो कि जो कुछ तुम्हें मिल रहा है, वह उसका वरदान

है, तुम्हारे मंगल के लिए है। इस दशा में क्या कोई भी विगत पर दु:खी, आगत से असन्तुष्ट और अनागत के लिए परेशान रहेगा? आप्तकाम होकर सन्तोष रूपी अमृत पीकर शान्त चित्त वाले मनुष्य को जो सुख मिलता है, धन के लालच में इधर-उधर दौड़ते हुए मनुष्य को वह सुख कभी नहीं मिल सकता। अत: 'दैव-दैव क्यों कहते हैं, दर्द दई सो कबूल,' इसे ही मुक्ति जानो।

प्रत्येक कार्य सोच-समझ कर करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि घरेलू काम-काज और सामाजिक व्यवहार इस तरह किए जाएँ कि उनकी कोई अवांछित प्रतिक्रिया जीवन में न हो। सोच-समझकर करने का मतलब होता है कि हाथ में लिया काम ऐसे करें कि पीछे पछताने की गुंजाइश न रहे। मान लो, तुम्हें अपने नौकर को हटाना है, या कुछ जमीन बेचनी है, तो सोच-समझ कर ही यह काम हाथ में लेना चाहिए। जो बिना विचारे करता है वह पीछे पछताता है। सच तो यह है कि आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित होकर कर्म को करना चाहिए।

जप, ध्यान, कीर्तन, आसन, प्राणायाम और घरेलू काम-काज में नियमित रहो। मधुमक्खी की तरह दिन-रात ईश्वर-साधना और गृह-सेवा में संलग्न रहो। एक क्षण के लिए भी मन को आवारागर्दी का अवसर मत दो। योगमय जीवन के अवतरण के लिए सबसे पहला नियम है मन का निरोध, याने मन को इतस्तत: भटकने ही न दो। जिसका मन भटकता है, उसे योग दुष्प्राप्य रहता है–

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मति:।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायत: ॥6.36॥

यद्यपि मन चंचल है, और उसे साधना कोई सरल काम नहीं, तथापि अभ्यास और वैराग्य से वह पकड़ में आ ही जाता है। मेरी समझ में निरोध का सर्वप्रथम उपाय है, मन को व्यस्त रखना, ताकि उसे अपनी मनमानी करने का मौका ही न मिले। यदि तुम अपने मन को सतत् व्यस्त रख सको तो वह तुम्हारे नियन्त्रण में आ जाएगा, और तुम उसे जैसे चाहो मोड़ सकोगे। याद रहे कि व्यस्त मनुष्य सुख-दु:ख की सीमाओं को पार कर जाता है। सतत् कार्यरत साधक कहीं अधिक सुखी रहता है।

घर का काम-काज करते समय जप या कीर्तन जोर से या मन-ही-मन अवश्य करो, जिससे व्यर्थ की चिन्ता करने का अवसर मिले ही नहीं। मुर्दे-का-सा चेहरा बनाकर मत रहो। हरदम खुश, मस्त और स्वस्थ रहो। हँसना और हँसाना सीखो। चिड़-चिड़ मत करो। भक्ति और कर्म में समन्वय खोजो। यदि उतना काम न मिल पाए तो भक्ति-साधना में अधिक समय दो। अगर काम-काज अधिक हो तो काम करते जाओ और नाम जपते जाओ। सदा आगे-आगे और सदैव कर्तव्यनिष्ठ रहो।

– 'योग साधना' से उद्धृत

योग से जुड़ने का संयोग

रामकृष्ण वर्मा, रायपुर

सन् 1971 की बात है। मैं अपनी दिनचर्या के अनुसार सुबह 4.45 बजे दौड़ने जा रहा था। दुर्ग में गाँधी चौक में एक एमबेसेडर कार मेरे रोड पार करते समय सामने आ गयी। मुझे रुकना पड़ा। कार धीमी हुई, वहीं खड़े कुछ व्यक्तियों ने उस कार का पीछा किया। चौक में ही सहकारी बैंक के परिसर में कार चली गयी। कार में चार संन्यासी बैठे थे। सभी कोई बैंक के प्रथम तल के हॉल में चले गये। मैं भी पीछे-पीछे चला गया। पता चला कि यहाँ पर योग का शिविर लगा है। मैंने भी वहीं रखे कम्बल उठाकर अन्य व्यक्तियों की भाँति कम्बल बिछा लिया और योग से जुड़ गया।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी के इस दस दिन के शिविर का यह दूसरा दिन था। सुबह और शाम, दोनों वक्त योग करवाते थे। उसी दिन से ऐसा लगने लगा कि

मुझे किसी ने काफी पावर वाला इन्जेक्शन लगा दिया है। पूरा शरीर हल्का लगना, काम करने की क्षमता दुगुनी हो जाना, सदैव प्रसन्न रहना, पाँच मिनट में गहरी निद्रा का आ जाना, इस प्रकार मेरे जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन आ गया।

सन् 1981 में श्री स्वामीजी रायपुर आश्रम में आने वाले थे। मुझे उनके इन्तजाम के लिए आश्रम में थोड़ा-सा काम दिया गया। मैंने वह काम किया। उस दौरान मैंने उनसे मंत्र दीक्षा भी ले ली। अब योगाभ्यास के साथ उनका दिया हुआ मंत्र भी चालू हो गया। धीरे-धीरे मेरे जीवन के रुके हुए कार्य पूरे होने लगे। श्री स्वामीजी जब भी रायपुर आते, उनके प्रवचन जरूर सुनता था। इन प्रवचनों में मेरे मन में जो भी शंकायें रहती थीं, वे पूर्णतया दूर हो जाया करती थीं।

अब मेरे मन में यह विचार आने लगा कि मैंने श्री स्वामीजी से मंत्र दीक्षा तो ले ली पर उनकी सेवा नहीं कर पाता, क्योंकि वे मेरे से बहुत दूर मुंगेर में रहते हैं। सन् 2001 में मुझे बोल-बम की काँवर यात्रा में जाने को मिला। साथियों के साथ देवघर गया। वहाँ से रिखिया भी गया। श्री स्वामीजी के दर्शन किये और थोड़ी देर का सत्संग भी हुआ। रिखिया आश्रम में उस समय कुछ निर्माण कार्य चल रहा था। कार्य देखकर मेरे मन में विचार आया कि मुझे यहाँ काम करना चाहिए ताकि इस प्रकार श्री स्वामीजी की सेवा भी हो जाए। संयोगवश एक वर्ष बाद रिखिया में छत्तीसगढ़ के यात्रियों के लिए एक धर्मशाला बनाने के काम में सेवा देने का मौका मिला। श्री स्वामीजी निर्माण कार्य देखने आया करते थे। निर्माण कार्य देखकर वे प्रसन्न भी हुए। इसके बाद रिखिया धाम व मुंगेर आश्रम के भी सभी निर्माण कार्यों में योगदान देने का श्री स्वामीजी ने आदेश दिया।

सन् 1971 में ब्रह्ममुहूर्त के समय श्री स्वामीजी के योग शिविर से जुड़ना बड़ा संयोग ही था। अगर एक-दो सेकेण्ड आगे-पीछे रोड पार कर लेता तो मैं योग से नहीं जुड़ पाता। योग से, आश्रम से और श्री स्वामीजी से जुड़ना—यह मेरे जीवन का सबसे सुनहरा अवसर और सबसे बड़ा सौभाग्य है।

आज का दिन—सर्वश्रेष्ठ शुभ मुहूर्त

अवसर की तलाश में मत रहो। बुद्धिमानों के लिए हर समय अवसर है। न वे मुहूर्त निकालते हैं, न साथ ढूँढते हैं और न सहारा तकते हैं। स्रष्टा ने समय को ऐसी धातु से गढ़ा है कि उसका प्रत्येक क्षण शुभ है। आशावादी हर कठिनाई से उपयोगी अवसर ढूँढ निकालता है जबकि निराशावादी हर उपस्थित अवसर में कोई-न-कोई कठिनाई देखता है। हर दिन, हर सप्ताह, हर मास, हर वर्ष हमारे लिए उज्ज्वल भविष्य के उपहार लिए हुए आता है, हम हैं जो न तो उसे पहचानते हैं और न उसका स्वागत करते हैं। फलतः वह वापस चला जाता है और फिर कभी वापस लौटकर नहीं आता।

गीता में कर्मयोग

दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण से संसार में आज तक कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं लिखा गया जिसने इतनी स्पष्टता के साथ, इतनी हिम्मत के साथ, और इतने विश्वास के साथ कर्म को स्वीकार किया हो। संसार में जितने भी धर्मों या दार्शनिकों का आवागमन हुआ, उन सब लोगों ने अन्त में जाकर कर्म को, जगत् को हेय बतलाया, घृणास्पद बतलाया। केवलमात्र गीता ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसने कर्म को योग के रूप में स्वीकार किया। जहाँ संसार के अन्य दार्शनिक कर्म को भोग का, संग्रह का, अपनी वासनाओं की पूर्ति का साधन मानते हैं, वहाँ गीता कर्म को योग का साधन मानती है, आप्तकाम होने का साधन मानती है। गीता मानती है कि परमात्मा के अनुभव में कर्म एक जरूरी कड़ी है। बिना कर्म के जीवात्मा का सुधार नहीं हो सकता, इस बात की अगर किसी ने दृढ़ विश्वास के साथ घोषणा की है, तो सिर्फ गीता ने।

वैसे भी हमलोगों के मन में कभी-कभी यह विचार उठता है कि आखिर जब कर्म का त्याग ही करना था तो भगवान या प्रकृति ने कर्म बनाया ही क्यों? पहले तो बनाया कर्म, और उस कर्म में हमको फँसा दिया, उसके बाद अपने सन्तों को भेजकर यह कहलवाया कि कर्म को छोड़ो, कर्म को त्यागो, कर्म को त्यागे बिना मुक्ति नहीं होगी! यह भ्रान्तिपूर्ण दर्शन मेरी समझ के बाहर है। अगर कोई ईश्वर है तो उसने कर्म क्यों बनाया? अगर उसने कर्म बनाया तो उसके दूत आकर कर्म का त्याग करने को क्यों कहते हैं? जरूर कहीं पर गलती है। काफी सोच-विचार करने पर हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कर्म का निर्माण प्रकृति या भगवान ने उसको त्यागने के लिए नहीं किया है। कर्म का त्याग कभी हो नहीं सकता है। न वैरागी कर्म का त्याग कर सकता है, न जीवनमुक्त। और तो और, कर्म करने में आलसी भी कर्म का त्याग नहीं कर सकता है। इसीलिए कर्म हेय नहीं है, त्याज्य नहीं है, कर्म कोई गलत वस्तु नहीं है, बल्कि इस कर्म के दर्शन को प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में समझना है।

कर्म की परिभाषा

कर्म क्या है? कर्म का मतलब है चेष्टा याने गति, क्रिया, प्रयत्न, पुरुषार्थ, हलचल। सवाल उठता है, चेष्टा किसकी? ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और अन्त:करण की। इन तीन प्रकार की चेष्टाओं को कहते हैं कर्म। हाथ से आप ग्लास उठाते हो, पैरों से आप दो कदम या दो मील चलते हो, उसको कहते हैं कर्म। आप लिखते हो, सुनते हो, खाते हो, सोते हो—ये सब कर्म हैं। यहाँ तक कि आप माँ के उदर से जन्म लेते हो और शरीर का त्याग करके यह जगत् छोड़ देते हो, यह भी कर्म है। कर्म का त्याग करना भी कर्म है, क्योंकि वह भी चेष्टा है। जीवन की समष्टि का नाम चेष्टा है। मृत व्यक्ति ही चेष्टाहीन हो सकता है। गीता में कहा है—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै: ॥ 3.5 ॥

कौन आदमी दुनिया में ऐसा है जो एक क्षण के लिये भी कर्मरहित हो सकता है? श्वास लेना भी तो कर्म है। इसीलिये गीता में दो प्रकार के कर्मों की बात कही गयी है। एक प्रकार के कर्म वे होते हैं जो अपने आप होते हैं। सांस लेना, शरीर में चयापचय की क्रियायें होना—ये स्वगतक्रियाएँ हैं, अपने आप होने वाली क्रियायें हैं। दूसरे कर्म वे होते हैं जो कामना से प्रेरित होकर किये जाते हैं। मनुष्य जब किसी इच्छा से प्रेरित होकर उस वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न करता है, उसको कहते हैं कर्म। जैसे धन की इच्छा हुई, उसके लिए आपने बड़ी नौकरी खोज ली या डाका डालना शुरू किया, रिश्वत लेना शुरू किया, इसको कहते हैं कर्म या चेष्टा।

कर्मयोग

गीता कहती है साधारण मनुष्य कामनाओं की पूर्ति के लिए चेष्टा करता है और उसके मन में फल की आशा बनी रहती है। इसे कहते हैं कर्म। कर्म के फल की जो आशा बनी रहती है उसकी अगर पूर्ति हुई तो मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है और जब इच्छित फल की प्राप्ति नहीं हुई तो दु:ख होता है। जिससे सुख अथवा दु:ख की प्राप्ति हो उसे कहते हैं कर्म। कर्म से सुख अथवा दु:ख की प्राप्ति होती ही है, परन्तु गीता ने एक ऐसा रास्ता निकाला है जो संसार में किसी ने भी नहीं निकाला। संसार के लोगों ने सिर्फ दो ही रास्ते देखे थे, एक रास्ता देखा था त्याग का और दूसरा भोग का। या तो तुम कर्म को त्याग दो, क्योंकि जब तक कर्म करोगे तब तक झंझट, चिन्ता, तकलीफ, तनाव बना रहेगा। दूसरी ओर कुछ लोगों ने कहा, क्यों त्यागते हो भाई कर्मों को? आराम के साथ मौज उड़ाओ, संसार का आनन्द उठाओ। ये हुए भोगवादी लोग।

गीता ने एक नया समन्वय खोज निकाला और उसे नाम दिया कर्मयोग। गीता के अनुसार संसार के साधारण-से-साधारण कर्मों को करते हुए भी हम अपने मन में एक ऐसी भावना बना सकते हैं जिसके द्वारा कर्म से उत्पन्न होने वाला जो फल है वह हमें प्राप्त नहीं होता। संसार में मनुष्य अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रयत्न करता है। उसकी इच्छाएँ जब पूरी नहीं होतीं तो उसे बहुत दु:ख, बहुत निराशा होती है। इससे उसका व्यक्तित्व बिगड़ जाता है। आदमी अगर दिल का मजबूत रहा तो अपने को सम्हाल लेता है। अगर वह दिल का कमजोर रहा तो उसका नर्वस ब्रेकडाउन हो जाता है, वह पराजित होकर गिर पड़ता है। क्यों? इसलिये कि उसने संसार से बहुत आशा की थी। लेकिन जो मनुष्य संसार में रहकर सब कुछ करता है, किन्तु संसार से कोई आशा नहीं रखता, ऐसा आदमी कर्मयोगी है। जो व्यक्ति संसार से बहुत बड़ी आशायें बनाता है और सोचता है कि यह संसार मेरे लिये संतोषजनक होगा, यही संसार मेरे लिये सब कुछ है, ऐसे आदमी को संसार एक दिन पराजित कर देता है। ऐसे आदमी को अशान्त, चंचल, अस्थिर, विक्षिप्त या पागल कहते हैं। इस आशाहीन संसार से बड़ी-बड़ी आशायें करना, यही वह स्थान है जहाँ से दुनिया का सारा दु:खांत नाटक शुरू होता है।

अगर कोई सिर्फ इतनी-सी बात को पकड़ ले तो वह कर्मयोग में दाखिल हो गया। उसे कर्म मिटा नहीं सकता, बरसात भिगा नहीं सकती, आग उसे प्रभावित नहीं कर सकती। उसको न मच्छरों से फाइलेरिया हो सकता है, न खटमल से काला ज्वर। हैजावालों के बीच रहने से उसे न हैजा हो सकता है, न चेचक वालों के साथ रहने से चेचक, न कोढ़ियों के घाव छूने से कोढ़। न मेहतर को छूने से वह अपवित्र हो सकता है, न विष्ठा छूने से। ऐसा शक्तिशाली आदमी कौन हो सकता है? जो संसार में कर्म करता है किन्तु फलों की आशायें नहीं करता। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥

तुम्हारा दायित्व, तुम्हारा हक सिर्फ यह है कि तुम काम करो। उस काम से उत्पन्न होने वाला जो फल है, उस पर तुम्हारा हक नहीं है। वह तुम्हारे अधिकार के बाहर की चीज है। तुम कर्मफल के हेतु मत बनो।

कर्मफल से आसक्ति

कर्मफल का हेतु क्या चीज है? एक उदाहरण दूँगा। दो माली थे। वे एक दिन बाजार गये और वहाँ से सौ-सौ आम के पौधे खरीद लाये और अपने बगीचे में लगा दिए। रात को अपने बिस्तर में सोया हुआ एक माली सोचने लगा, 'सौ आम

लगाया है, कलमी आम है, पाँच साल के बाद जरूर इतना फल देगा और इस दर के मुताबिक बेचने पर मुझे जरूर इतने रुपये मिलेंगे। पहले साल के लाभ से मैं इतने सरकारी बॉण्ड खरीदूँगा जिससे पाँच साल में मुझे इतना ब्याज मिलेगा।' वह इसी तरह के हवाई किले बनाने लगा। कुछ सालों में उसने आमों का निर्यात भी शुरू कर दिया था और अपने लिए कई बंगले भी बनवा लिए थे। वह बीड़ी भी फूँकते जाता था और इस तरह हिसाब भी करते जाता था। सबेरे वह उठा, लोटा लेकर मैदान में गया, उसी तरफ से खेत भी चला गया। जाकर क्या देखता है कि रात को भैंसों ने आम की पचास कलमें खा डाली हैं। अब उसका दिमाग एकदम

गरम हो गया। उसी हालत में घर वापस आया। घर आते ही लड़के से मुलाकात हुई जिसने फीस की मांग की। उसका दिमाग तो गरम था ही, कस कर एक तमाचा लड़के की गाल पर जड़ दिया, 'तेरा बाप कमाकर लाता है जो फीस देगा!' भूल गया कि खुद ही तो उसका बाप है। घर के अन्दर गया तो चाय में चीनी कुछ कम थी। बस चाय का कप उठाकर फेंक दिया, टेबल उलट दी। उसका दिमाग बेकाबू हो गया था। इसको कहते हैं कर्म के फल का हेतु।

दूसरा माली सबेरे उठा। उठकर गया मैदान। उधर से बगीचे को देखने गया तो उसके बगीचे का भी वही हाल हुआ था। पचास कलमें खतम कर डाली थीं भैंसों ने। वह तुरन्त घर वापस गया, और अपने बाल-बच्चों, भाई-भतीजों, सबको बुलाकर कहा कि पचास कलमें तो खत्म हो गईं, अब जो बाकी हैं, उनकी रक्षा के लिए बाड़ा बना देना चाहिए। दिनभर परिश्रम कर उन लोगों ने बाड़ा बना दिया तथा शाम होने तक काम समाप्त कर शांतिपूर्वक घर चले गये। इसे कहते हैं कर्मफल का हेतु न होना या कर्म से असंगता। दूसरे माली ने कर्म को तो नहीं छोड़ा था, लेकिन कर्म के फल का जो भोक्तापन था, उसे त्याग दिया था। पहला माली कर्म का कर्ता भी था और कर्म के फल का भोक्ता भी बना। लेकिन जो दूसरा माली था वह कर्म का कर्ता तो बना जरूर, लेकिन कर्म के फलों का भोक्ता नहीं बना। उसने आम तो लगाया जरूर, लेकिन रात को लम्बी-चौड़ी योजनाएँ नहीं बनाईं। सिर्फ इतना ही सोचा कि सौ आम लगाए हैं, बड़े होंगे तो बाल-बच्चे खायेंगे।

संसार में तीन प्रकार के कर्म, तीन प्रकार के फल तथा तीन प्रकार के भोक्ता होते हैं। साधारण कर्म, सत्कर्म और कुकर्म–ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं। कर्म के तीन फल होते हैं–इष्ट, अनिष्ट और मिश्रित। जैसा चाहा, वैसा मिला, अच्छा बेटा चाहा, अच्छा बेटा मिला, अच्छी नौकरी चाही, अच्छी नौकरी मिली। मन के मुताबिक जो मिला उसे कहते हैं इष्ट फल। दूसरा होता है अनिष्ट फल, चाहा कुछ, मिला कुछ दूसरा। तीसरा फल होता है मिश्रित, याने मिला हुआ। हमने चाहा था कि लड़का लन्दन जाकर एक बार लौट आता, पर उसने भारत में ही वकालत कर ली, यह हुआ मिश्रित फल। इच्छा कुछ अंशों में पूरी हुई और कुछ में पूरी नहीं हुई। इस तरह तीन प्रकार के फल होते हैं।

वैसे ही तीन प्रकार के भोक्ता भी होते हैं। एक तो होते हैं इच्छित फलों के भोक्ता। इनको कहते हैं सुखी लोग, क्योंकि इनकी सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। दूसरे होते हैं अनिष्ट फल के भोक्ता, जिनके जीवन में हमेशा अनिष्ट ही अनिष्ट होते रहता है। उनके बारे में कहा जाता है कि ये दु:खी हैं। तीसरे होते हैं वे लोग जिनको कभी मन मुताबिक चीज मिलती है, कभी नहीं मिलती। उनके बारे में कहते हैं कि खाते-पीते हैं, अच्छा घर है, ज्यादा सुखी-सम्पन्न नहीं हैं पर दु:खी भी नहीं हैं। औरत तो खैर बात मानती नहीं, मगर बेटा बड़ा लायक है। या आदमी बड़ा

अच्छा है, सज्जन है, लायक है, पर शरीर से लाचार है। या आदमी बड़ा मेधावी है, बढ़िया काम करने वाला है, पर चाल-चलन ठीक नहीं है। ये हैं मिश्रित फलों के भोक्ता। दुनिया में ये तीन प्रकार के भोक्ता होते हैं।

सुख और दुःख

इस विषय पर मेरी अपनी राय यह है कि संसार में आज तक कोई भी केवल सुख का भोक्ता नहीं हुआ, और न कोई केवल दुःख का भोक्ता हुआ। संसार में जितने भी प्राणी हैं, जो समझदार हैं, जिनकी बुद्धि है, आप देखेंगे कि वे सुख-दुःख, दोनों के बारी-बारी से भोक्ता होते हैं। ऐसा हो ही नहीं सकता कि मनुष्य की सब इच्छायें पूरी हों। उसी तरह यह भी नहीं हो सकता कि मनुष्य की सब इच्छायें अपूर्ण रहें। मनुष्य के जीवन में दुःख भी आता है और सुख भी, लेकिन उसके मन पर दुःख का ही असर परिलक्षित होता है, सुख दब जाता है। अगर किसी के घर में शादी हो और उसी दिन घर में किसी की मृत्यु हो जाए तो बाजा बजेगा या मातम मनाया जायेगा? स्पष्ट है कि मातम मनाया जाएगा। पूछा जा सकता है कि बाजा क्यों नहीं बजेगा, मातम ही क्यों मनाया जाएगा। यह नियम है। मनुष्य के मन पर दुःख का असर सुख की अपेक्षा अधिक पड़ता है, और सुख एवं दुःख जब एक साथ आते हैं, तब दुःख ही मनुष्य पर अधिकार जमाता है, सुख समाप्त हो जाता है। सुख का अनुभव बहुत मृदुल रहता है, जबकि दुःख का अनुभव बहुत तीव्र। दुःख अगर थोड़ा ही होगा तो भी सारे सुख को चौपट कर देगा, लेकिन अधिक-से-अधिक सुख भी थोड़े से दुःख को दबा नहीं सकता। यही संसार की रीति है।

इसके पीछे कारण यही है कि मनुष्य को सदा मृत्यु से, रोग से, पाप से, गरीबी से, निन्दा से, असुविधा से, बैरी से घृणा है। उसी प्रकार उसे सम्पत्ति से, सहानुभूति से, सुविधाओं से, मित्रों से प्रेम है। यह मनुष्य स्वभाव की विशेषता है। यही कारण है कि जब किसी वजह से उसकी इच्छित चीज का अभाव होता है, तब उसके मन पर बड़ा जबरदस्त असर होता है। गीता के कथनों से हम यह समझते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को संसार में कर्म करते हुए अपने मन में एक ऐसी शक्ति का उपार्जन करना चाहिए जिससे उसके मन पर सुख और दुःख दोनों का असर पड़े ही नहीं। सुख और दुःख, दोनों का मनुष्य साक्षी बन जाए, देखता जाए। है तो कठिन बात, लेकिन एक-न-एक दिन सब लोगों को यही करना है।

मनोविज्ञान का कहना है कि जब मनुष्य मन में कामना का जन्म होता है, अगर उस कामना की पूर्ति हो गई तो उसके मन में फिर दूसरी कामना जन्मती है। जो आदमी अपना जीवन सफल बनाता है वह कामनाओं को पूरा करते जाता है, क्योंकि उसकी कामनाओं के मार्ग में कोई भी रुकावट नहीं है। स्वामी शिवानन्द

जी कहा करते थे कि मुखतार वकील बनना चाहता है, वकील उच्च न्यायालय का वकील बनना चाहता है, वह वकील न्यायाधीश बनना चाहता है, न्यायाधीश मुख्य न्यायाधीश बनना चाहता है, मुख्य न्यायाधीश राज्यपाल बनना चाहता है। इन इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। जब तक इच्छा करते जाएँ और कोई दुर्घटना न हो तो इच्छाएँ सुरसा की तरह बदन बढ़ाती जाएँगी। अगर कहीं शुरू में ही रुकावट आ गई, तब वह आदमी अन्धविश्वासी और शक्की हो जाता है। अगर दूसरी बार प्रयत्न करे और फिर फेल हो जाए तो सोचता है कि कोई देवता मेरे खिलाफ हैं। उसके बाद अगर फिर सफलता मिली, तो कहेगा कि भगवान का दर्शन किया था इसलिए सफलता मिली। दुबारा सफलता मिली तो कहेगा, अब की बार दाईं आँख फड़की थी। अगली बार फिर सफलता मिली तो कहेगा, अब की बार स्वामीजी का दर्शन किया था इसलिए सफलता मिली।

मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य अगर लगातार सफल होता जाए तो वह अपनी इच्छाओं से अभिभूत हो जाता है। वह उन इच्छाओं से इतना दब जाता है कि उसका मन-मस्तिष्क कमजोर पड़ने लगता है। इच्छायें करते-करते तथा उन इच्छाओं की पूर्ति होते-होते इन्सान का दिमाग थक जाता है, शरीर थक जाता है। जब उसका दिमाग काम नहीं करता तो रोग हो जाता है।

दूसरा एक ऐसा आदमी है जो कुछ दिन तक तो सफल रहा और बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाईं। जो उसने सोचा वह होता गया। इस तरह से वह अपना मुँह बढ़ाता गया सुरसा की तरह, पर एक दिन सब ठप्प हो गया। अब अस्पताल में भरती है। क्या हुआ? दिल का दौरा पड़ा। किसी के दिल पर चोट लगती है, तो किसी का दिमाग घूम जाता है। किसी-किसी को भूत दिखाई देता है। किसी को देवी लग जाती है। असल में कमजोर दिमाग पर असर पड़ने से न्यूरोसिस, मधुमेह और उच्च रक्तचाप जैसी कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। मनुष्य अगर गलत महत्त्वाकांक्षा रखता है तो उसका दिमाग बिल्कुल बिगड़ सकता है। बच्चे इच्छा करते हैं कि हम फर्स्ट-क्लास में पास होंगे। अगर फर्स्ट-क्लास न मिली तो बच्चे के दिमाग पर बड़ा असर पड़ता है। इसी तरह लड़कियाँ जब शादी करती हैं तो सोचती हैं कि पति अच्छा होगा, मुझे बहुत मानेगा, खूब रुपया-पैसा देगा, बहुत प्रेम करेगा। ऐसी महत्त्वाकांक्षा प्राय: लड़कियों के मन में बनी रहती है, लेकिन ऐसा होता नहीं है। यह भगवान का कानून है। कुछ-न-कुछ बिगड़ता ही रहता है। बिगड़ता है तभी चाबी ठीक रहती है।

मन की मजबूती

अब यह लड़की जो महत्त्वाकांक्षा करती है, हवाई किले बनाती है, उसके भविष्य का क्या होता है? सपने बनाने से संस्कार होते हैं, संस्कारों से दु:ख-ताप होता है।

यह मन का स्वभाव है। अगर दिमाग मजबूत होगा तब तो ठीक है, सब सहन कर लेगा, लेकिन अगर दिमाग कमजोर रहा तो फिर दिमाग बिगड़ जाता है, आदमी पागल हो जाता है। उसे कुछ-का-कुछ दिखलाई पड़ता है, कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। सारी मनोवैज्ञानिक बीमारियाँ यहीं से शुरू होती हैं। मनुष्य जब जरूरत से ज्यादा इच्छायें बना लेता है और वे पूर्ण नहीं होतीं तब कमजोर दिमाग वालों पर बीमारियों का अधिकार हो जाता है। गीता कहती है कि तुम्हारी हर महत्त्वाकांक्षा पूरी नहीं होगी। अभी तक जो कुछ तुम्हें मिला है उसी से सन्तुष्ट रहो।

एक महाशय थे। वे बाजार जा रहे थे। जूते पुराने थे, पैर कट गया। बुरा तो लग रहा था, लेकिन पहनना ही पड़ा, क्योंकि उनके पास और तो कोई जूता नहीं था। आगे बढ़ने पर देखा एक आदमी खिसक-खिसक कर चल रहा था। महाशय ने सोचा, 'हे भगवान, इस आदमी को तो पैर ही नहीं दिए हैं, मुझे कम-से-कम पैर तो दिये हैं।' उसका हृदय करुणा से भर गया। महर्षि अरविन्द ने लिखा है, 'जो मनुष्य अनागत से परेशान, वर्तमान से असन्तुष्ट तथा भूतकाल के प्रति जिसके मन में पश्चात्ताप रहता है, ऐसे मनुष्य का नाम है नास्तिक।' ऐसे लोग भगवान की पूजा करते हैं, मन्दिर भी जाते हैं, तीर्थयात्रा भी करते हैं, मगर भगवान को मानते हुये भी ऐसे मनुष्य नास्तिक हैं। वे अगर मानते हैं कि भगवान है, तब फिर अनागत के लिए यह परेशानी क्यों? ऐसे नास्तिक हमेशा यही सोचते रहते हैं कि कल क्या होगा, कल क्या होगा। अरे भाई, जब आप मानते हैं कि भगवान है तो यह कल की चिन्ता क्यों? इसी तरह वर्तमान से असन्तोष क्यों? अगर भगवान ने बीमारी दी है, तो अकल भी तो दी है न?

यदि आप डॉक्टर से अपने मनमुताबिक दवाई माँगेंगे तो क्या वह देगा? आप जहर मागेंगे तो क्या वह जहर दे देगा? कभी नहीं देगा। जो आवश्यक दवाई होगी, वही देगा। बच्चा अगर अपना हाथ आग में डालना चाहे तो क्या माँ उसे ऐसा करने देगी? हरगिज नहीं। उसी तरह भगवान मनुष्य की कुछ इच्छाओं को पूरा करते हैं, कुछ को नहीं करते। भगवान ने तुम्हें घर दिया है, बाल-बच्चे दिये, सुख-सम्पत्ति दी, फिर अगर बाप मर गया तो क्या हुआ? और तो सब कुछ

दिया है न? भगवान ने जब ऐसा दिमाग दिया फिर भी दु:खी क्यों? दु:ख अपनी गलतियों से होता है। भगवान किसी को भी दु:ख या सुख नहीं देते। कोई कहता है, बेटा बड़ा ही अच्छा है, केवल एक गलती है उसमें कि वह अपनी मर्जी से चलता है। दूसरा कहता है, पत्नी बहुत अच्छी है, सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है, बड़ी विद्वान् है, केवल एक गलती है कि वह अपने विचार पर चलती है। जो जीवन से सन्तुष्ट नहीं होते वही संसार में दु:खी, बीमार और पागल होते हैं।

संसार में रहकर कर्म करने में कोई दोष नहीं है। मनुष्य को स्वधर्म का पालन करना चाहिए। कोई व्यक्ति एक छोटे-से मकान में रहता है। अब उसके पास पैसे आते हैं जिससे वह बड़ा घर ले लेता है और छोटे घर को छोड़ देता है। यह हुआ स्वधर्म। आप कार्य करते जाओ। कर्म से अच्छी चीज मिले या न मिले, लेकिन मन को मजबूत बनाओ जिससे उस पर किसी तरह का असर न पड़े, उसे कोई तोड़ न सके। कई विद्यार्थी ऐसे होते हैं कि अगर मनचाहे नम्बर नहीं मिलते तो उनके मन पर इतना असर होता है कि वे आत्महत्या तक कर लेते हैं। पत्नी के कलहप्रिय होने के कारण पति अपना जीवननाश कर लेते हैं। सब कुछ करो, लेकिन मन पर उसका असर न पड़े। मन को मजबूत बनाओ, उस बरसाती कोट की तरह जिसे बरसात में पहनते हैं, बाद में उतार कर रख देते हैं तो पानी की एक बूंद नहीं रहती। उसी तरह दु:ख रूपी बूंद भी मनुष्य के जीवन में नहीं रहनी चाहिए। कमल के पत्ते की तरह पानी में रहकर भी पानी से प्रभावित नहीं होना चाहिए। संसार में रहना चाहिए जब तक आसक्ति, मोह तथा प्रारब्ध है। जब तक संसार में रहोगे तब तक चूड़ियाँ बजेंगी ही। यह सब चलता रहेगा। खूब कर्म करो, पर मन पर संस्कार नहीं बनना चाहिए। गुस्सा आने पर भी मन पर असर न पड़े। छोटी-छोटी बातों का मन पर असर नहीं पड़ना चाहिए। जीवन में परिश्रम अधिक करो, सोचो कम और चिन्ता बिल्कुल मत करो। यही गीता के कर्मयोग का सार है।

–मूलत: योगविद्या के सितम्बर 1967 अंक में प्रकाशित

नाद ध्यान

संस्कृत शब्द 'नाद' का अर्थ है 'ध्वनि' या व्युत्पत्ति के अनुसार 'चेतना का प्रवाह'। नाद सृष्टि का मूल स्पन्दन है, सदा विद्यमान रहने वाली सृजनात्मक दिव्य ध्वनि है। यह आध्यात्मिक अभ्यासों का बीज है। ध्वनि के माध्यम से आध्यात्मिक जागृति की कला नाद योग के नाम से जानी जाती है।

आज विज्ञान ने प्रत्येक वस्तु का गतिशीलता की स्थिति में होना प्रमाणित कर दिया है। प्रत्येक वस्तु कम्पन की स्थिति में है। अन्वेषण, परिष्करण तथा शनैः-शनैः सूक्ष्मतम स्थिति तक इन कम्पनों पर नियंत्रण ही नाद ध्यान का उद्देश्य है। अंततः व्यक्ति अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को अपनी प्रकृति के साथ समस्वरित कर लेता है। स्वर में बँधे हुए एक वाद्ययंत्र के समान मनुष्य अपने शरीर एवं मन को जीवन के साथ समस्वरित कर लेता है।

नाद सभी धर्मों की मीमांसाओं में पाया जाता है। इसे बौद्धिक तर्कों के तराजू में नहीं तौला जा सकता है; यदि इसे समझना है तो यह आत्मिक शक्तियों द्वारा करना होगा जो विचारों के स्तर से परे होती हैं। इसे ऐसे जीवन-सिद्धान्त के रूप में समझना होगा जो जीवन में सृजनात्मकता को गति प्रदान करता है। यह आपमें, मुझमें, पत्थर में और कंकड़ में भी है। मनुष्य को उसमें प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त है।

नाद योग ध्यान की सरल, सहज विधि है जिसका उपयोग प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा किया जा सकता है। यह संगीतात्मक या रचनात्मक प्रवृत्ति के लोगों के लिए विशेष रूप से उपयोगी साधना है।

नाद योग के विशेषज्ञों ने ऐसी क्रमबद्ध पद्धति प्रतिपादित की है जो अभ्यासी को धीरे-धीरे नयी अनुभूतियों का अभ्यस्त बनाती है और साथ ही आगे भी ले जाती है। एक भ्रमित मस्तिष्क का नाद सिर के अन्दर से गुजरने वाले तूफान के समान है। नादयोग के द्वारा भ्रमित शक्ति को संगठित कर एक लेजर किरण के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार अभ्यासी को सतत् अंतर्मुख करते हुए नाद व्यक्ति की वर्तमान चेतन स्थिति एवं उसकी महान् आंतरिक क्षमताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित कर देता है। इसके द्वारा विकास की ऐसी क्रमिक प्रक्रिया होती है जो व्यक्ति को ध्वनि की इतनी सूक्ष्म सजगता प्रदान करती है कि वह बाह्य की अपेक्षा आंतरिक अवधारणाओं का सहारा लेने लगता है। बाहरी वास्तविकताओं में सुख और सुरक्षा ढूँढने वाला मन आंतरिक वास्तविकताओं की ओर उन्मुख हो जाता है। किसी भी चीज का निषेध नहीं होता है। मन के स्थूल पक्ष पेड़ के सूखे पत्तों की तरह झड़ कर गिर जाते हैं।

नाद का विभाजन

पारम्परिक रूप से नाद को चार भागों में विभक्त किया गया है। पहला है बैखरी, दो स्थूल वस्तुओं की आपसी टकराहट से उत्पन्न ध्वनि। इसके अंतर्गत सभी प्रकार का शोरगुल, संगीत, वाणी इत्यादि आते हैं। फिर है मध्यमा, फसफुसाहट वाली ध्वनि। यह बैखरी से थोड़ी सूक्ष्म है और कठिनाई से सुनाई पड़ती है। इसके बाद है पश्यन्ति, जिसे मानसिक ध्वनि कहा जा सकता है। इसे भौतिक कानों के द्वारा नहीं सुना जा सकता है, बल्कि यह मन की गहराइयों में स्वयं प्रकट होती है। यह स्वप्न में सुना हुआ संगीत हो सकता है या काल्पनिक वाणी या मानसिक प्रकृति की कोई ध्वनि हो सकती है। अत में परा नाद है, अर्थात् अनुभवातीत ध्वनि। यहीं पर वास्तविक नाद आरम्भ होता है। यह इतना सूक्ष्म होता है कि इसकी अनुभूति मन के द्वारा भी नहीं हो सकती।

अतीत काल में नाद योग साधना के आधार पर ही संगीत पद्धतियों का विकास किया गया था। नाद की विभिन्न तरंगें चेतना की विभिन्न अवस्थाओं को प्रभावित करती हैं। नाद की विशेष तरंगें विशेष समय में विभिन्न व्यक्तियों को रुचिकर या अरुचिकर प्रतीत हो सकती हैं।

नाद योग पाँच आयामों पर आधारित है—शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, अतिमानसिक एवं आत्मिक। प्रत्येक आयाम में इसका अपना कम्पन स्तर होता है और इसे समझने की अपनी विधि होती है। ज्यों-ज्यों मन शुद्ध और स्पष्ट होता जाता है, इसकी समझ भी अधिक सूक्ष्म होती जाती है।

चक्रों के जाग्रत होने के साथ नाद ध्यान के क्रम में ध्वनियों की अनुभूति सूक्ष्मतर होती जाती है। उदाहरणार्थ, मूलाधार पर सम्भवत: केवल स्थूल रूप में आन्तरिक एवं बाह्य कोलाहल का अनुभव होगा। वहाँ से अनाहत की ओर बढ़ने पर सूक्ष्म रूप से विकास होता है। वहाँ सुनाई पढ़ने वाली 'अनाहत' ध्वनि आध्यात्मिक ध्वनि की ओर प्रयाण का संकेत देती है।

जब नाद योग एक बार गतिमान हो जाता है और नियमित अभ्यास के द्वारा उसे कायम रखा जाता है तो यह स्वत: निर्दिष्ट होता है। यह ऐसी वस्तु भी नहीं जिसे किसी ऐसे व्यक्ति को दिया जाए जिसकी इसमें रुचि नहीं है। किसी व्यक्ति के नाद सम्बन्धी अनुभवों को वस्तुत: गुरु के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझ सकता। इसलिए अन्य व्यक्तियों से इसका उल्लेख नहीं करना चाहिए।

पारम्परिक रूप से नाद योग के अभ्यासियों ने विभिन्न चक्रों के माध्यम से अपनी चेतना को उन्नत किया और ज्यों-ज्यों उनकी साधना में प्रगति होती गयी उन्हें विभिन्न विशेषताओं वाली ध्वनियों का अनुभव हुआ। अन्तत: उनका परमोत्कर्ष बिन्दु पर हुआ। यह बताया गया है कि यहाँ पर नाद ऐसा रूप धारण कर लेता है जो मन की सीमा से परे होता है।

चक्रों पर स्वर साधना

यह एक अद्‌भुत संयोग की बात है कि सात मुख्य रंग होते हैं, मानव शरीर में सात मुख्य चक्र होते हैं और संगीत में सात मुख्य स्वर होते हैं। यहाँ नाद ध्यान की एक ऐसी विधि है जो संगीतज्ञों को विशेष रूप से रुचिकर प्रतीत होगी—सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठकर आँखें बन्द कर लें और एक तारयुक्त वाद्य यंत्र के साथ 'सा, रे, ग, म, प, ध, नी, सां—सां, नी, ध, प, म, ग, रे, सा' का अभ्यास करें। अब इन स्वरों को मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, बिन्दु एवं सहस्रार के साथ मिलायें। अपनी सजगता को स्वरों के साथ सुषुम्ना के मार्ग से एक चक्र से दूसरे चक्र होते हुए मूलाधार से सहस्रार तक ऊपर-नीचे घुमायें। इसके बाद स्वरों का अभ्यास विभिन्न चक्रों में करें। चक्रों में होने वाली गूँज इन्हें सक्रिय कर देती है।

इस अभ्यास के क्रम में उत्पन्न हुए स्पन्दन शरीर के स्नायुजाल और अंत:स्रावी ग्रंथियों को उद्‌दीप्त करते हैं तथा स्नायु तंत्र को शान्त एवं शिथिल करते हैं।

भ्रामरी प्राणायाम

भ्रमर का शाब्दिक अर्थ भौंरा होता है। भौंरे जैसी गुंजन-ध्वनि के साथ किया जाने वाला यह प्राणायाम नाद योग के साधक के अन्दर की सूक्ष्म ध्वनि की सजगता को उद्‌दीप्त और जाग्रत करता है।

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठकर हाथों को घुटनों पर ज्ञान या चिन्मुद्रा में रख लें। दोनों नासिका छिद्रों से गहरी श्वास लें। श्वास को अन्दर रोक कर पाँच की गिनती तक जालंधर और मूल बंध करें। तत्पश्चात् बंध को मुक्त करें और दोनों हाथों को उठाकर कानों के पास ले जायें। कानों को तर्जनियों से बंद करें और अन्य अंगुलियों को आपस में सटाकर रखें। दोनों केहुनियों को बाहर की ओर सीधा रखें।

ऊपर-नीचे के दाँतों को अलग रखते हुए मुँह बंद रखें। देर तक भ्रमर जैसी ध्वनि निकालते हुए धीरे-धीरे श्वास छोड़ें। लगभग तीस सेकेण्ड तक यह ध्वनि निकलनी चाहिए। अपने सिर के अन्दर केवल इस ध्वनि एवं इससे उत्पन्न स्पन्दन के प्रति सजग रहें। श्वास छोड़ने के बाद हाथों को नीचे कर लें, लम्बी श्वास लें और इसी अभ्यास को पाँच मिनट तक करें।

अभ्यास समाप्त करने के बाद भी मन को पूरी तरह ध्वनि के स्पन्दन पर लगाये रखें। ध्यान दें कि कोई सूक्ष्म ध्वनि सुनाई देती है या नहीं। यदि उस तरह की कोई स्पष्ट ध्वनि सुनाई दे तो कुछ देर के लिए उस पर ध्यान केन्द्रित कर लें। यदि आपके कान पर्याप्त रूप से संवेदनशील हैं तो उस स्पष्ट ध्वनि के साथ पृष्ठभूमि में एक अस्पष्ट-सी ध्वनि भी आपको सुनाई दे सकती है। पहली ध्वनि को छोड़कर उसके पीछे से उभरने वाली नयी ध्वनि पर ध्यान एकाग्र करें। पहली ध्वनि से परे जाकर नयी ध्वनि की स्पष्टता को अनुभव करने का प्रयास करें। इस प्रकार एक ध्वनि पर कुछ देर एकाग्र होने के बाद उसके पीछे से निकलने वाली ध्वनि को सुनने का अभ्यास जारी रखें।

अपने ध्यान को नयी ध्वनि पर केन्द्रित हो जाने दें। प्रत्येक नयी ध्वनि अपने पहले वाली ध्वनि से अधिक सूक्ष्म होगी जो यह संकेत देगी कि आप मन की

गहराइयों में उतरते जा रहे हैं। इस अभ्यास को अधिक-से-अधिक तीस मिनट तक जारी रखें।

इसके बाद अपनी सजगता को अपने शरीर और स्वाभाविक श्वास पर ले आयें। तीन बार 'ॐ' का उच्चारण करें और जब आप अपने शरीर एवं इसके वातावरण के प्रति पूरी तरह सजग हो जायें तो अपनी आँखें खोल दें।

यह आंतरिक चेतना को जागृत करने की सरलतम, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली विधि है। इसके अभ्यास द्वारा आप ध्यान की स्थिति तक पहुँच सकते हैं। यदि आरम्भ में आप कोई सूक्ष्म ध्वनि नहीं सुन पाते हैं तो इससे हताश होने की आवश्यकता नहीं है, यह अवश्य प्रकट होगी। जो ध्वनि आप सुनेंगे वह ढोल, शंख, तुरही, झिंगुर, घंटी, झरना, वीणा, बाँसुरी, चिड़िया इत्यादि के समान ध्वनि हो सकती है।

नाद संचालन

सिद्धासन, सिद्ध योनि आसन या पद्मासन में बैठकर आँखें बंद कर लें। पाँच मिनट तक काया स्थैर्यम् का अभ्यास करें। शरीर को क्रमिक रूप से शिथिल करें और एक मूर्ति के समान पूर्णत: स्थिर कर लें।

अब आँखें खोलकर श्वास छोड़ दें, अपने सिर को सामने झुकायें और ठुड्ढी को धीरे से छाती पर टिक जाने दें। अपनी सजगता को मूलाधार चक्र पर ले जायें। मानसिक रूप से 'मूलाधार, मूलाधार, मूलाधार' दोहरायें। इसके बाद उज्जायी श्वसन करते हुए आरोहण मार्ग के द्वारा अपनी सजगता को मूलाधार से बिन्दु तक ले जायें। जब आप एक-एक चक्र से होते हुए ऊपर बढ़ते हैं तो प्रत्येक चक्र पर ध्यान दें।

जब आपकी सजगता विशुद्धि से बिन्दु की ओर जाती है, अर्थात् उज्जायी श्वास अपने अन्तिम चरण में होती है, तब अपने सिर को धीरे से उसकी स्वाभाविक स्थिति में ले आयें। यहाँ श्वास को रोक कर मानसिक रूप से 'बिन्दु, बिन्दु, बिन्दु' को दोहरायें।

'बिन्दु' शब्द की पुनरावृत्ति करते हुए आपकी सजगता की शक्ति बढ़ती जायेगी और 'ॐ' के जोरदार उच्चारण के साथ इसका विस्फोट होगा जिसे आप अवरोहण मार्ग से मूलाधार में भेजेंगे। 'ॐ' की 'ओ' ध्वनि अचानक और विस्फोटक होगी। 'म' ध्वनि लम्बी और खिंची हुई होगी तथा मूलाधार तक पहुँचते-पहुँचते गुँजरित होकर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जायेगी।

जब आप अवरोहण मार्ग पर हों तब भी आपको मानसिक रूप से आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र के नामों को दोहराना चाहिए। जब आप मूलाधार में पहुँच गये हैं, तब श्वास लेने से पूर्व मानसिक रूप से 'मूलाधार, मूलाधार, मूलाधार' दोहरायें। इसके बाद अपने सिर को पहले की ही तरह सामने की ओर झूल जाने दें, उज्जायी श्वास के साथ आरोहण मार्ग पर अपनी सजगता को ऊपर ले जायें तथा मार्ग में आने वाले प्रत्येक चक्र को अपने मन पर अंकित

करें। इस तरह के अधिक-से-अधिक तेरह राउण्ड का अभ्यास करें और अन्त में 'मूलाधार, मूलाधार, मूलाधार' दोहरकार समाप्त करें।

कीर्तन एवं संगीत

कीर्तन एवं संगीत, दोनों ही भावना, बुद्धि एवं सजगता को ध्वनि के रूप में व्यक्त करने और समन्वित करने के साधन हैं। संगीत का उतार-चढ़ाव भावनाओं पर आधारित होता है। कीर्तन संगीत के माध्यम से मन में जमे अनेक विकारों और बाधाओं को धीरे-धीरे तोड़ डालता है। सभी परम्पराओं के योगियों और साधकों ने मन का अतिक्रमण करने के लिए कीर्तन की शक्ति को बहुत पहले पहचान लिया था। कीर्तन के माध्यम से सात्त्विक भावनाओं का जागरण और उत्थान होता है, जो अंत में भाव-समाधि के द्वार तक ले जाता है। यही कारण है कि अधिकांश धार्मिक एवं आध्यात्मिक सम्प्रदायों में किसी-न-किसी रूप में कीर्तन विद्यमान है।

कीर्तन दिन-प्रतिदिन जमने वाले तनावों और कुण्ठाओं से मुक्त करता है। यद्यपि कीर्तन की ध्वनि में स्थिरता नहीं भी हो सकती है और कीर्तन गाने वाले संगीत में प्रशिक्षित नहीं भी हो सकते हैं, किन्तु कीर्तन के मूल में नाद होता है। कीर्तन सब को नाद के मूल तत्त्व का स्पर्श करने का साधन प्रदान करता है।

संगीत में कीर्तन के सभी गुण होते हैं किन्तु दोनों में अन्तर है। संगीत बैखरी ध्वनि का विशेष रूप से विकसित विज्ञान है। लोग वर्षों तक संगीत की शिक्षा ग्रहण करते हैं, न केवल एक अच्छा संगीतज्ञ बनने के लिए, बल्कि एक अच्छा संगीत पारखी बनने के लिए भी। संगीत और कीर्तन अपने आप में गहन विषय हैं। दोनों ही असंख्य लोगों को प्रेरित करते हैं और दोनों ही नाद के स्रोत से उत्पन्न होते हैं।

– 'ईश्वर दर्शन' से उद्धृत

आराध्य के श्रीचरणों में

संन्यासी शिवमंगलम्, बेगुसराय

प्रथम बार मुझे 1978 में गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर श्री स्वामीजी के दर्शन का सौभाग्य मिला। उस दिन उनकी करुणापूर्ण दृष्टि मुझ पर पड़ी। वह इतनी तीक्ष्ण थी कि मेरे अन्तरतम को भेद गयी। उस करुणा-दृष्टि को जीवन में कभी भूल नहीं पाया।

एक बार मैं मानसिक रूप से बीमार पड़ा। साथ ही भावनाएँ भी उसकी चपेट में आ गईं। उस समय मुझे किसी प्रकार की चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हो पा रहा था। मैंने उस आर्त्त अवस्था में मध्यरात्रि के समय श्री स्वामीजी से प्रार्थना की। चमत्कार घटित हुआ, सुबह में एकदम स्वस्थ था। इससे श्री स्वामीजी के प्रति मेरी श्रद्धा प्रगाढ़ हुई और मैं दीक्षा हेतु प्रेरित हुआ।

शुरू में मेरे मन में बहुत-सी जिज्ञासाएँ थीं। मेरी जिज्ञासाओं पर श्री स्वामीजी ने एक बार गीता के निम्न श्लोक को उद्धृत किया–

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपिचिन्तयेत्॥2.47॥

थोड़ा-सा भाव मैं समझ पाया, किन्तु गीता के अध्ययन की ललक जगी, मैंने पढ़ना शुरू किया। द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बतलाये गये हैं, वे सब श्री स्वामीजी में घटित होते थे। इससे मैं उनकी महिमा को थोड़ा समझ पाया।

एक बार सत्संग के समय एक युवक ने कहा कि मैं क्रियायोग सीखना चाहता हूँ। श्री स्वामीजी बोले, 'तुम ही नहीं, यहाँ जितने लोग बैठे हैं, कोई उसे सीखने के लायक नहीं है।' उनकी इस बात से सीख लेकर मैंने कभी क्रियायोग की चर्चा नहीं की। बाद में एक अन्य सत्संग के समय मैंने पूछा, 'आपने कहा है कि प्राणायाम का विस्फोट बम की तरह होता है, मंत्र का विस्फोट डाइनामाइट की तरह होता है, मैं तो ऐसा कुछ अनुभव नहीं करता?' इस पर उन्होंने प्राणायाम के साथ बंध को जोड़ने का आदेश दिया जिसके अभ्यास से मुझे इसकी सत्यता का बोध हुआ।

एक बार विषाद और निराशा से पीड़ित व्यक्ति को लेकर मैं श्री स्वामीजी के दर्शन के लिए आया। उन्होंने अपनी व्यथा श्री स्वामीजी को सुनाई। इस पर मुझे उन्हें योगाभ्यास सिखाने हेतु आवश्यक निर्देश मिला। उन्होंने पुनः पूछा, 'मैं ठीक हो जाऊँगा न?' श्री स्वामीजी बोले, 'हाँ, आप ठीक हो जायेंगे।' दो-तीन बार उन्होंने इसी प्रश्न को दुहराया तो अचानक मुझे उनपर क्रोध आ गया। मैं उन्हें

डाँटने लगा, लेकिन श्री स्वामीजी हाथों के इशारे से मुझे मना करते हुए बोले, 'इस बीमारी में ऐसा ही होता है।' उनके धैर्य और वात्सल्य से मैं अभिभूत हो गया।

एक बार आयुर्वेद का एक छात्र योग शिक्षक प्रशिक्षण हेतु आया। वह ज्वर से पीड़ित हो उपवास करने लगा। श्री स्वामीजी ने उससे कहा, 'जब जैसा तब तैसा, ऐसा नहीं तो साधु कैसा। अभी योगाभ्यास सीखना है, दवा ले लो।' छोटी-छोटी चीजों में भी उनकी समझदारी और व्यावहारिकता स्पष्ट झलकती थी।

किसी सत्संग के समय एक महिला ने आचार्य रजनीश से संबंधित शिकायत के समाचार को दिखलाने का प्रयास किया। श्री स्वामीजी को जैसे सब पता हो, एकदम वितृष्ण होकर बोले, 'बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।' ऐसा उनकी दृष्टि का उज्ज्वल पक्ष था!

एक बार कुटीर में श्री राधा-कृष्ण पर आधारित वीडियो फिल्म दिखाई जा रही थी। कन्हैया मुरली बजाते हुए राधा के साथ नृत्य कर रहे थे। मैं श्री स्वामीजी के पास बैठा था, मेरी दृष्टि बार-बार उनकी ओर उठ जाती थी। उन्होंने मुझसे पूछा, 'मुझमें और श्रीकृष्ण में क्या अंतर है? यही न कि मैंने मुरली नहीं बजाई।' बाद में रिखियाधाम में एक अद्‌भुत सुन्दर तस्वीर में हमने देखा कि श्री स्वामीजी ओठों पर मुरली धारण किये हैं ...। अंत में भाव सुमन अर्पित करते हुए श्री गुरुदेव से यही प्रार्थना है–

भक्तिदान मोहि दीजिए, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिए, निशिदिन तेरी सेव॥

मौन की महिमा

जब मनुष्य चलते-चलते थक जाता है, तो विश्राम के लिए सो जाता है। जब अधिक खा लेने से उसका पेट कष्ट का अनुभव करता है, तब वह उपवास कर लेता है। इसी प्रकार जब निरन्तर बोलने से हमारे मन और स्नायु-संस्थानों में तनाव की स्थिति आ जाती है तो 'मौन' व्रत का पालन करना चाहिए।

एक साधु का कहना है कि बोलने से जो शक्ति खर्च होती है, वह ब्रह्मचर्य-नाश से कहीं अधिक है। इसका यही मतलब हुआ कि बोलते समय मन के साथ-साथ स्नायु-मण्डल भी परिश्रम करता है, फलत: रक्तचाप बढ़ता है और अनेकों विकारों एवं उन्मादों का जन्म होता है।

मौन धारण करने में वही विशेषता है, जो सोने, उपवास करने तथा आराम के अन्य तरीकों में है। मानसिक तनाव एक ऐसी परिस्थिति है, जिससे व्यक्तित्व के तमाम आयाम विकृत होने लगते हैं। मानसिक तनावों का मुख्य कारण है इन्द्रियों के द्वारा उनकी शक्ति से अधिक परिश्रम करना। प्रत्येक इन्द्रिय का सम्बन्ध सीधे मन और स्नायुओं से है। इस प्रकार 5 कर्मेन्द्रियों (वाणी, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ), 5 ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना एवं नाक) तथा अन्त:करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) के 14 दरवाजों से प्राप्त होने वाले अनुभवों तथा कर्मों में जब अतिशयोक्ति हो जाती है, तब इसका प्रभाव स्नायुओं तथा मन पर पड़ता है। फिर यही प्रभाव प्राणों में फलित होता है, और प्राणों के द्वारा ही यह हमारे शारीरिक अवयवों में प्रकट होता है। यदि इन्द्रियों में तनाव अधिक रहेगा तो शरीर में विकार और उन्माद जागेंगे, और यदि उनके तनाव को शान्त करते जाएँ तो शरीर में सौम्यता रहेगी। अनिद्रा, भूख का अभाव, उद्वेग, हृदय की अनियमित धड़कन और सिरदर्द जैसे विकार तनावों के ही सीधे परिणाम हैं।

साधारण दृष्टि में तो मौन एक धार्मिक आडम्बर और निरर्थक प्रयास-सा मालूम पड़ता है, परन्तु मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान की गहराइयों में उतरने से हमें मौन का विशेष महत्त्व मालूम पड़ने लगता है। सीधे शब्दों में कह दिया जाय कि मौन-व्रत से शरीर-विकार एवं मानसिक तनाव दूर होते हैं, व्यक्ति को आराम मिलता है, ज्ञान-तन्तु जागृत हो जाते हैं तथा इन्द्रियों की स्थिति पुन: सबल और परिश्रम-योग्य हो जाती है।

वैसे तो किसी भी इन्द्रिय के कार्य-कलापों के तटस्थ हो जाने को मौन कहा जा सकता है, पर मौन से यहाँ हमारा अभिप्राय 'वाणी के मौन' से है। अनजाने में हम कभी-कभी घण्टों चुप रहते हैं। इससे हमारा अभिप्राय नहीं है। सचेत भाव से, नियमानुसार 2 घंटे से लेकर 12 घंटों तक के संकलित मौन को ही 'मौन व्रत' की

संज्ञा दी जाती है। इसके साथ-साथ कुछ और नियम हैं, जिनके पालन करने से ही मौन सत्यत: निष्पन्न होता है।

वैसे तो मौन सबके लिए हितकर है। परन्तु इसका प्रभाव अधिक बोलने का पेशा करने वालों, अधिक विचार करने वालों और अधिक बातचीत सुनने वालों में विशेष रूप से प्रकट होता है। वकील, बैरिस्टर, शिक्षक, जज और विद्यार्थी जैसे लोगों के लिए निश्चितकालीन मौन अति-हितकर है। उद्वेगों, चिन्ताओं तथा अधिक बकवास से जब दिमाग के तन्तुओं में रक्त-संचार तीव्रतम हो जाता है, तब या तो माथा पिराने लगता है, या हृदय में घबराहट होने लगती है, अथवा निद्रा का अभाव हो जाता है। नित्य या सामयिक मौन का नियमानुकूल अभ्यास करने वालों को या तो ये कष्ट होते ही नहीं, यदि होते भी हैं तो स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ जाते।

बिल्कुल काम न हो, कल्पनाओं की तरंगें उठ रही हों, अस्त-व्यस्त विचारों की भरमार हो, तो भी तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तात्पर्य यह कि जहाँ अधिक परिश्रम से उत्तेजना होती है, वहाँ परिश्रम का अत्यन्ताभाव भी यही स्थिति ले आता है। भले ही आपको आश्चर्य हो, पर ऐसी अवस्था में भी मौन व्रत से पूर्ण लाभ होता देखा गया है। ऐसे लोग यदि संकल्प करके कुछ समय तक नित्य मौन रहें तो उनकी आन्तरिक शक्तियाँ जागकर प्रतिशोधक क्षमता का निर्माण करने लगेंगी।

बुद्धि जटिल हो, निश्चयात्मिका बुद्धि का अभाव हो, संकल्प डगमगा रहे हों, तो भी तनाव की विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में भी मौन व्रत से पूर्ण लाभ होता देखा गया है। इस प्रवृत्ति वाले लोगों को मौन-व्रत का एक नियम ही बना लेना चाहिए। धीरे-धीरे उनमें निश्चय, बुद्धि और स्थिरता का वातावरण कायम होते जायेगा। नियमित मौन से संकल्पों को शक्ति का वरदान प्राप्त होता है और बुरी आदतों से मुक्ति मिलती है।

ईश्वर-भाव की लगन हो, आन्तरिक विश्लेषण का वातावरण तैयार करना हो और भाव-भक्ति में वृद्धि करनी हो, तो भी मौन व्रत का प्रयोजन सिद्ध होता है। जो व्यक्ति ईश्वर-भाव की साधना करते और उसमें सफल होना चाहते हैं, उन्हें निश्चयपूर्वक संकल्प सहित प्रतिदिन मौन व्रत का पालन करना चाहिए। मौन व्रत के पालन से न केवल शरीर और मन, बल्कि व्यक्ति की संस्कार पीठिका भी प्रभावित होती है। 'मैं मौन धारण किए हूँ'—ऐसी भावना बनी रहने से अवश्य आनन्द मिलता है।

अरुणाचलम् के महान् संत श्री रमण महर्षि, जिन्हें इस युग का ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है, निरन्तर मौन व्रत का पालन करते थे। बहुत आवश्यक हुआ तो दो-चार वाक्य मात्र बोलते थे। घर छोड़ने के बाद उन्होंने बोलना ही बन्द कर दिया था। इसमें संदेह नहीं कि योगीजन मौन व्रत द्वारा योगशक्ति और ज्ञान को जगाते हैं।

इसी प्रकार पॉण्डिचेरी-निवासी महर्षि अरविन्द ने निवृत्ति के बाद मौन और एकान्त में जाकर शक्ति को जागृत किया था। अभी भी भारत में अनेकों ऐसे महापुरुष हैं, जो मौन-व्रत की महिमा की प्रत्यक्ष प्रयोगशालाएँ हैं। साधारण गृहस्थों की तो गिनती ही कहाँ तक करें। अभी भी अनेकों प्रवृत्तिशील और समाज के कार्यों को करने वाले सभी वर्गों के बहुत लोग नियमित रूप से मौन-व्रत का अभ्यास करते हैं। लाभ उन्हें अवश्य हुआ है, अन्यथा उपयोगितावादी, प्रयोजनी तथा भौतिक विचार वाली मनुष्य-बुद्धि अब तक इस साधना को अपने जीवन में अंगीकार किए नहीं रहती।

हमने कइयों को नित्य दो घण्टे के मौन का अभ्यास दिया तो पता चला कि उनके शरीर, मन और आत्मा में परिवर्तन का अभियान आरम्भ हो चुका है। प्रत्यक्ष दृष्टि से इसकी महिमा दिखेगी नहीं, परन्तु है यह महामहिमाशाली साधना।

मौनाभ्यास नित्य भी होता है, साप्ताहिक और सामयिक भी। तीनों का अपना-अपना महत्त्व है, परन्तु पहले साप्ताहिक अभ्यास ही उचित है। सामयिक मौन-धर्म तो विशेष काल में लगातार कुछ दिनों तक चलता रहता है, अत: इसके हेतु कुछ पूर्वार्जित अभ्यास की आवश्यकता है। नित्य अभ्यास भी प्रारम्भ में नहीं बनता। अत: पहले-पहल सुविधानुसार सप्ताह में एक बार 6 घण्टे से लेकर 18 घण्टे तक का मौन धारण करना चाहिए।

यदि आप दैनिक श्रम से परेशान हैं तो सन्ध्याकाल के एक घण्टे पूर्व और एक घण्टे बाद तक, दो घण्टे यह साधना करें। वकीलों और बोलने का पेशा करने वालों को चाहिए कि घर पर आते ही 2-3 घण्टे के लिए मौन-व्रत धारण कर लें। यदि 3 के बदले 5-6 घण्टे भी हो जाए तो हर्ज नहीं। पर 2 घण्टे से कम नहीं होना चाहिए।

साप्ताहिक मौन धारण करने वालों को कम-से-कम 6 घण्टे और अधिक-से-अधिक 18 घण्टे का अभ्यास करना चाहिए। इतना अवश्य है कि कई घण्टों तक का अभ्यास करने वाले मौन की अवधि में स्नान, भोजन, शौच आदि कर सकते हैं। परन्तु 2 या 3 घण्टे का ही अभ्यास करने वालों को चाहिए कि वे मौन-व्रत काल में जप, मन्त्रलेखन, ध्यान और धर्मग्रन्थ अध्ययन के अतिरिक्त और कोई भी प्रवृत्ति न करें। 18 घण्टे तक मौन-व्रत धारण करने वालों को इतना जान लेना चाहिए कि यह समय यदि साधना में ही लगा दिया जायेगा तो अमित लाभ होगा, पर यह नहीं हो सके तो शौचादि और भोजनादि जैसे जरूरी काम भी किए जा सकते हैं।

सामयिक मौन धारण करने वालों को मौन-व्रत के साथ स्वाध्याय अनुष्ठान, जप अनुष्ठान, शास्त्र-रचना का अनुष्ठान, लिखित जप का अनुष्ठान आदि जैसे कर्म भी करने चाहिए। घर के अन्दर के काम, चिट्ठी-पत्री के काम, हिसाब-किताब के काम भी किए जा सकते हैं। सामयिक मौन-धारण करना ईश्वर-भावना के हित जरूरी है, जबकि दैनिक मौन का महत्त्व मानसिक और शारीरिक है।

दैनिक मौन की अवधि में 'हूँ-हाँ' आदि इशारों की जरूरतें कतई हटा देनी चाहिए। साप्ताहिक मौन की अवधि में आवश्यकतानुसार खाली इशारे किए जा सकते हैं। सामयिक मौन की अवधि में लिखकर उत्तर भी दिया जा सकता है, पर स्मरण रहे कि मौन का महत्त्व तभी महिमाशाली होता है, जब उस अवधि में किसी प्रकार के इशारे न हों, लिखकर भी उत्तर न दिया जाए। उपरोक्त व्यवस्थाएँ केवलमात्र समझौते के बतौर रखी गई हैं।

सन्तों का कहना है कि इस अवधि में आँखें बन्द रहनी चाहिए और मन सात्त्विक धर्मों में प्रवृत्त। यदि इस अवधि में लोगों के बीच बैठकर उनकी गप-शप चुपचाप भी सुनोगे तो मौन का महत्त्व 80% जाता रहेगा। इस समय कर्ण-पटों को भी पूर्ण विश्राम देना चाहिए।

यदि आप नेत्र मूँदकर, मन के धर्मों को ईश्वरमुखी बनाकर पूर्ण नियमों के अनुकूल नित्य 3 घण्टे भी मौन रहेंगे तो आपको अद्‌भुत आनन्द, विश्राम और शान्ति का अनुभव होगा। मान लीजिए, आप दोपहर को भोजन के बाद 2 घण्टे विश्राम करने का समय पाते हैं, तो आपको भोजनोपरान्त वज्रासन में बैठकर ससंकल्प मौन-सहित स्वाध्याय या लिखित जप में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। यदि आपके यहाँ मेहमान आए हों तो दूसरी बात है। तब आपको या तो समय बदलना पड़ेगा, या फिर तत्काल के लिए अभ्यास ही रोक देना होगा।

मौन धारण करने वालों को स्लेट-पेन्सिल लेकर घर-घर नहीं घूमना चाहिए। मौन काल में संचार भी वर्जित है। यदि इस काल में आकस्मिक उत्तरदायित्वों को निभाने की स्थिति आ जाए तो बुद्धिमानीपूर्वक उत्तरदायित्वों का आँकलन करके ही मौन-व्रत तोड़ना चाहिए। याद रहे कि दैनिक मौन-व्रत में यह नियम लागू नहीं

होता। जब आपके परिवार में यह वातावरण उपस्थित हो जायेगा तो फिर आपको किसी बात की असुविधा नहीं रहेगी।

परिवार के दो सदस्यों को एक साथ मौन-व्रत धारण नहीं करना चाहिए। इससे मानसिक शान्ति और आनन्द में कुछ-न-कुछ कमी रह ही जाती है। अत: अलग दो समय निर्धारित कर लेने चाहिए।

अनिद्रा रोग से पीड़ित लोगों के लिए सानुष्ठान (जप, ध्यान, स्वाध्याय, मिताहार, योगासन और मन्त्रलेखन) लगातार सात दिनों तक पूर्ण मौन-व्रत का अभ्यास रोग-निवारक सिद्ध हुआ है। अनिद्रा रोग के कारण कुछ भी क्यों न हों, हम अधिकार के साथ कहते हैं कि 'सानुष्ठान मौन-सप्ताह' उपरोक्त विकार का निवारण कर ही देगा।

उच्च रक्तचाप की शिकायत वाले बुद्धिजीवी वर्ग वालों को प्रतिदिन 2-3 घण्टे ससंकल्प मौन-व्रत के साथ-ही-साथ सप्ताह में एक बार 6 घण्टे से लेकर 18 घण्टे तक का अभ्यास भी अवश्य करना चाहिए। साधना की अवधि में सौम्य अनुष्ठानों के अतिरिक्त ऐसी प्रवृत्तियों से हटकर रहना चाहिए, जिनसे किसी भी प्रकार की उत्तेजना पैदा होने की जरा भी सम्भावना हो।

सारांश यह कि मौन-व्रत का अनुष्ठान जीवन की एक बड़ी आवश्यकता है, जिसे हम भूलते जा रहे हैं, जिसके स्वरूप को हमने विकृत कर दिया है और जो हमसे दूर होते जा रहा है। भागते हुए जीवन की थकावट को विकार और रोग कहते हैं। आराम इसकी दवा है। मौन-व्रत इसका उपदेश है।

सत्यम् वाणी

घर में संन्यास का भाव लेकर रहना बहुत कठिन है। मेरे से पूछो तो संन्यास में भी संन्यास का भाव लेकर जीना बहुत कठिन है, क्योंकि संन्यस्त होने पर भी, घर-परिवार छोड़ने पर भी, संन्यास की अनासक्ति और संन्यासी की मस्ती वाला जीवन, उसका बेफिक्री वाला जो स्वभाव होता है, वह संन्यासियों से भी नहीं हो पा रहा है। सांस्कृतिक दबाव, सामाजिक दबाव और अपने मन के दबाव से सब दबे हुए हैं। इसलिए कहता हूँ कि संन्यास आश्रम बहुत कठिन है।

फिर गृहस्थ आश्रम तो और भी मुश्किल है। आर्थिक दबाव है, सामाजिक दबाव है, सांस्कृतिक दबाव है। इनकी हालत है अर्जुन के जैसी। लड़ाई करने के लिए आ गए मैदान में, पर अब कहते हैं नहीं लड़ेंगे। लड़ाई के मैदान में मामा को देखा, काका को देखा, भतीजे को देखा, भाँजे को देखा तो बोले कि नहीं लड़ेंगे।

स्वयं भगवान ने कहा, तो भी सीधे स्वीकार नहीं किया न?

देखो जी, कुत्ते की पूँछ कभी सीधी नही होती। उसे सीधा करने का एक ही उपाय है कि उसे काट डाला जाए। आपको एक चीज समझ में नहीं आ रही है। यह सारा

संसार तो भगवान ने पैदा किया है। आप ही लोग कहते हैं, उनकी खोपड़ी में क्या घुसा कि उन्होंने एक अपूर्ण आदमी पैदा कर दिया। जब यह माना जाता है कि भगवान ने यह संसार पैदा किया, हर जीव-जन्तु को पैदा किया तो उसमें शिवजी के गणों की तरह सबको पैदा करके रखा है। किसी के पेट में मुँह है, किसी के नाक की जगह आँख है, किसी के आँख की जगह पर नाक है, समझ में आया न? माँ ने बच्चे को पैदा किया, मगर माँ जब बच्चे को समझाती है वह समझता नहीं है। हालाँकि बच्चा माँ से बहुत प्यार करता है, पर माँ की बात नहीं मानता, क्योंकि जब माँ ने बच्चे को पैदा किया तो उसमें एक अलग व्यक्तित्व आ गया। शरीर तो माँ ने दिया, बीज बाप ने दिया, मगर व्यक्तित्व तो दूसरा है, उसमें दूसरी आत्मा घुसी हुई है। वह तो अपने को अभिव्यक्त करेगी ही।

उसी तरह से भगवान ने जब सृष्टि पैदा की तो हर चीज में कोई गुण भर दिया। हर व्यक्ति उस गुण के अनुसार व्यवहार करता है। अर्जुन में उन्होंने क्षात्र-धर्म के गुण भरे, और कर्ण में उन्होंने एक नाजायज औलाद की ग्लानि भरी। उसके मन में वह ग्लानि हमेशा ही बनी रही, आत्महीनता के रूप में। दुर्योधन में महत्त्वाकांक्षाएँ भरी कि कब मैं युवराज बनूँगा, कब मैं राजा बनूँगा। साँप में जहर भर दिया, तुलसी में अमृत भर दिया और गंगा जल में पवित्रता भर दी। जो भी चीज जिस वक्त भी सृष्टि में पैदा हुई, उसमें तीन गुणों का विभाजन हुआ—तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण के समझाने पर भी अर्जुन को समझ में नहीं आया।

अर्जुन विषादग्रस्त हो गया था। विषाद क्यों होता है? तनाव की वजह से। तनाव क्यों होता है? जब कुछ समझ में नहीं आता तो तनाव होता है। अब अर्जुन को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। धनुष-तलवार लेकर खड़ा है, एकदम स्वर्ग में जाने के लिए तैयार है। बस आक्रमण की आज्ञा की देर है, और यहाँ भीष्म पितामह को देखता है, द्रोणाचार्य को देखता है, दुर्योधन और दु:शासन को देखता है, भाई-भतीजे को देखता है। बाप रे! अपने घरवालों को मारना पड़ेगा क्या? उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मारूँ या न मारूँ। तनाव हो गया और तनाव होने के बाद उसको नर्वस ब्रेकडाउन हो गया। गीता में लिखा है—

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते॥2.47॥

वह बोलता है, 'मेरा शरीर काँप रहा है, मेरे बाल खड़े हो रहे हैं, मेरे हाथ से धनुष सरक रहा है, मेरी चमड़ी जल रही है, मुझसे खड़ा हुआ नहीं जा रहा है।' चिकित्सा शास्त्र में ये सब नर्वस ब्रेकडाउन के लक्षण हैं न! तो ऐसी अवस्था में अर्जुन को श्रीकृष्ण की बात कैसे समझ में आती? बिजली तो है पर बल्ब फ्यूज़ है तो जलेगा कैसे?

एक बात और समझ लो। निर्गुण, निराकार परमेश्वर, जो अकर्ता और अभोक्ता हैं, जब किसी वजह से वे शरीर धारण करते हैं तो प्रकृति के आश्रित हो जाते हैं, स्वतंत्र नहीं रहते। प्रकृति के सारे गुण उनमें आ जाते हैं। आप बहुत भले घर के वृद्ध सज्जन हैं, पर कल हम एक फिल्म में आपको काम दे देते हैं एक जोकर का, तो जिस वक्त आप जोकर का रोल स्वीकार करोगे, उसके सारे धर्म आप पर लागू हो जायेंगे। आपको जोकर की तरह ही अभिनय करना होगा, आप यह नहीं बोल सकते कि मैं तो बहुत बड़ा आदमी हूँ, मैं मज़ाक नहीं करूँगा। परमात्मा सत्-चित्-आनंद हैं, आपने किताबों में जो पढ़ा है, वह सब सही है, मगर जिस वक्त भगवान प्रकृति के आश्रित होते हैं, उन पर जन्म-मरण, यश-अपयश, दु:ख-सुख, हर्ष-विषाद, सीमा-मर्यादा जैसे प्रकृति के सारे धर्म लागू हो जाते हैं। यह नियम है। *प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया*–अपनी प्रकृति को अधिष्ठान बनाकर मैं पैदा होता हूँ।

यह बात हमेशा याद रखो कि परमेश्वर अकर्ता हैं, न दु:ख के कर्ता हैं, न सुख के। कर्ता है प्रकृति। प्रकृति कौन है? भगवान की माया को प्रकृति कहते हैं। उसे आद्या और जननी जैसे अनेक नामों से पुकारते हैं। यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। जैसे पानी में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन, ये दो तत्त्व होते हैं, वैसे प्रकृति में तीन तत्त्व होते हैं–सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। मजे की बात यह है कि जो प्रकृति सृष्टि का निर्माण करती है, जन्म-मरण का निर्धारण करती है, तुम्हें सुख-दु:ख देती है, तुम्हें हँसाती है, रुलाती है, वह स्वयं जड़ है। जैसे बिजली का बल्ब जड़ है, चेतन नहीं है, पर प्रकाश वही देता है। बल्ब निकाल दो, प्रकाश खत्म।

प्रकृति पुरुष के संयोग से चेतना ग्रहण करती है। प्रकृति स्वयं कुछ नहीं कर सकती, उसे ईश्वर को अधिष्ठान बनाना पड़ता है। इस तरह पुरुष-प्रकृति के योग से यह सृष्टि पैदा होती है। अब इसमें भगवान कृष्ण के कहने पर भी यदि अर्जुन को समझ में नहीं आया तो बकायदा ठीक था, क्योंकि श्रीकृष्ण भी स्वयं सीमित थे, माया में बँधे हुए थे। असल में देखा जाए तो वे फिल्म की स्क्रिप्ट के मुताबिक चल रहे थे। प्रकृति ने उनके लिए एक स्क्रिप्ट लिखा था कि तुम ऐसा करोगे, वैसा करोगे, और वही वे कर रहे थे। इसको कहते हैं लीला। लीला का मतलब होता है अभिनय।

भगवद् भजन

भगवान का नाम लेने में मन नहीं भी लगे तो भी भजन करना चाहिए। रामायण पढ़ने में मन न भी लगे तो भी पढ़ना चाहिए। भूख न होने पर भी लोग रसगुल्ला नहीं खाते हैं क्या? *भाव-कुभाव अनख आलसहुँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ*–भाव से बोलो या कुभाव से बोलो, आलस्य से बोलो या लापरवाही से बोलो, गलती से भी बोलो, पर भगवान का नाम मंगल ही करता है, जैसे गेहूँ का बीज उल्टा-सीधा कैसे भी गिरे, वह सीधा ही पैदा होता है।

वैसे भगवान का नाम लेने में कौन जबरदस्ती करता है, चाहो तो मत लो, लेकिन भगवान का नाम लेने में लोग जितना आलस्य करते हैं, नाम न लेने के जितने बहाने ढूँढते हैं, उतने बहाने और किसी चीज में नहीं ढूँढते हैं। हमें तो भाई साकार जमता ही नहीं—यह एक बहाना हुआ। राम तो ऐतिहासिक व्यक्ति थे, भगवान नहीं थे—दूसरा बहाना। कृष्ण जी का चरित्र ठीक नहीं था—तीसरा बहाना। शिवजी तो अनाड़ियों के भगवान थे—एक और बहाना। ऐसे बहुत-से बहाने लोगों को मिल जाते हैं, पर वे यह नहीं देखते कि जिन फिल्मी सितारों के पीछे वे दीवाने हैं, उनका चरित्र कैसा है। यह सब कोई नहीं देखता, केवल भगवान के नाम में सब तरह के प्रश्न उठने लगते हैं। इसलिए तुलसीदास जी कहते हैं कि निराकार बड़ा सुलभ है, जबकि साकार बहुत दुर्लभ है, समझ में ही नहीं आता।

संगीत संस्कृति

हर शताब्दी की एक सभ्यता, एक संस्कृति होती है। अगली शताब्दी की संस्कृति संगीत है। मैं माँ-बाप से कहता हूँ बच्चों को लिखना-पढ़ना बाद में सिखाओ, गाना पहले सिखाओ। जैसे ही किसी महिला को पता चले कि मेरे पेट में बच्चा उतर गया है तो उसे सीधा संगीत सीखना चाहिए। एकदम शुरू कर देना चाहिए। जैसे प्रह्लाद के पेट में आते ही उसकी माँ ने भजन करना शुरू कर दिया था। जैसे ही खट्टा-मीठा आम खाने का मन करे, पहले भगवान का भजन होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब उसे बचपन से प्रशिक्षण मिला हो।

दूसरी बात जो अब पता चल रही है विज्ञान में कि संगीत के द्वारा, संगीत से उत्पन्न स्पन्दनों द्वारा मस्तिष्क को प्रभावित किया जा सकता है। याने संगीत को तुम एक उपचार पद्धति मानो तो कोई गलती नहीं होगी। जब तुम संगीत गाते हो तो ध्वनि को, नाद को उत्पन्न करते हो। यह ध्वनि, जिसे नाद-ब्रह्म कहते हैं, धीरे-धीरे कुण्डलिनी को जगा सकती है। संगीत की साधना तो एकदम अलग साधना है। उसे साधना के रूप में न भी लो, केवल मनोरंजन के रूप में लो तो संगीत से बेहतर मनोरंजन कोई नहीं। और अगर शृंगार के मार्ग पर चलना चाहो,

याने रोमांस का पक्ष भी लेना चाहो तो संगीत से बढ़कर कोई दूसरी चीज नहीं। शृंगार की अभिव्यक्ति, भक्ति की अभिव्यक्ति, मनोरंजन की अभिव्यक्ति संगीत में ही अच्छी तरह हो सकती है।

इस वर्ष सीता-कल्याणम् में जो भजन होंगे वे शिव-पार्वती पर ही होंगे, क्योंकि हमलोगों के यहाँ माना जाता है कि सीताजी भी अपने विवाह के पहले गौरी जी का ही पूजन करने गई थीं। कोई भी भजन नहीं चलेगा, जो भजन-कीर्तन हम निश्चित करेंगे उतना ही चलेगा। शिव-गौरी के कितने ही भजन और स्तुतियाँ संस्कृत में हैं। मैथिली में शिव-गौरी के बहुत-से भजन हैं। सीताजी के विवाह में इस साल मुख्य अतिथि के रूप में देवघर के शिवजी महाराज को बुलाया है। कैलास वाले शिवजी को नहीं बुलाया है, वहाँ से वीज़ा की समस्या हो जायेगी उनको, और खर्चा बहुत पड़ेगा हमको, क्योंकि वे पैदल तो आयेंगे नहीं, हवाई जहाज से आयेंगे। यहाँ वाले शिवजी को तो रिक्शॉ में ले आयेंगे! अब की बार शिव-गौरी को मुख्य अतिथि के रूप में रखेंगे।

आज दुनिया में योग की उन्नति, संगीत की उन्नति और उपासना की उन्नति पश्चिम से आ रही है। अजीब नहीं है क्या? पश्चिम में आपको शायद ही कोई व्यक्ति मिलेगा जो संगीत नहीं जानता हो। वहाँ सभी बच्चों की छोटी उम्र से ही संगीत की शिक्षा शुरू हो जाती है।

सामाजिक उत्तरदायित्व

महाराज अग्रसेन बड़े प्रतापी राजा थे। वे क्या करते थे कि जब उनके पास कोई भीख के लिए आता था तो अपनी जनता में सबसे एक रुपया और एक ईंटा लेकर दे

देते थे। पचास हजार लोगों से 50,000 रुपये और 50,000 ईंटें आ जाती थीं। उस आदमी का घर भी बन जाता और कारोबार भी शुरू हो जाता। यह उनका नियम था।

आज के दौर में अगर हमारा भाई गरीब हो जाए तो हम लोगों को मालूम ही नहीं कि उसे कैसे उठाना, उसे लाख रुपये कैसे दें। यह नहीं कि समाज के लोग सब एक-दो रुपये देकर, उसके लिए लाख रुपयों की व्यवस्था कर दें और बोलें, चल अपना व्यापार कर। आज का आदमी अपने बारे में और अपनों के बारे में ही सोचता है। आज अपनों की परिभाषा है—मैं, मेरी बीवी और मेरा बच्चा। जब तुम्हारी अपनों की यह परिभाषा है तो आज समाज की परिभाषा भी बदल गई है। पर ऐसा होना नहीं चाहिए। मनुष्य पर अपनी और अपने बीवी-बच्चों की जिम्मेदारी तो है, लेकिन साथ ही उसके ऊपर समाज का उत्तरदायित्व भी है। बगल के घर में आग लगी हो तो मेरा घर कब तक बचा रहेगा? वह भी एक-न-एक दिन जलेगा। लोग यह मानकर नहीं चल रहे हैं। यह तो समाज का ऋण है, और यही मुख्य कारण है कि हमारे समाज में दरिद्रता, निरक्षरता और कंगाली है।

क्या आत्मा अपने व्यक्तित्व और स्मृतियों को बनाए रखती है या मृत्यु के बाद इन्हें खो देती है? यदि खो देती है तो क्या फिर स्मृतियाँ मानवता की सामूहिक चेतना से आती हैं?

जब गेहूँ या कोई और बीज अपने पेड़ या पौधे से अलग होता है तो उसकी गुणवत्ता को क्या होता है? क्या गेहूँ या धान का पौधा उस बीज में मर जाता है? नहीं, वह उस बीज में प्रसुप्त अवस्था में है। यह तुम्हारे प्रश्न का सरल-सा उत्तर है। सांख्य, वेदान्त, बौद्ध और जैन दर्शनों में इस विषय को बड़े विस्तार से समझाया गया है कि आत्मा एक शरीर को कैसे छोड़ती है और दूसरा शरीर कैसे प्राप्त करती है। उनकी व्याख्याओं में अंतर जरूर हैं, लेकिन इतनी बात तो निश्चित है कि जब मैं मरता हूँ तो मेरा यह स्थूल शरीर यहीं छूट जाता है। वह शरीर या तो जला दिया जाता है या फिर दफना दिया जाता है, और वह पंचतत्त्वों से एकाकार हो जाता है। लेकिन मनुष्य केवल यह स्थूल शरीर नहीं, इतना तो सब मानते हैं। तुम मानते हो कि शरीर में एक आत्मा भी होती है, एक व्यक्तित्व भी होता है, एक जीव भी होता है। जब शरीर मरता है, तो वह जीव शरीर छोड़ देता है।

अब वेदान्त और सांख्य के अनुसर इस आत्मा का स्वरूप कैसा है? इन दर्शनों में कहा गया है कि मनुष्य के वास्तव में तीन शरीर होते हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल शरीर तो मर जाता है, तुमने देखा है, पर बाकी दो शरीरों का क्या होता है? इन्हीं की गति होती है। एक वाहन बनता है, तो दूसरा पैसेंजर। फिर वे प्रसुप्त अवस्था में, शून्यता की स्थिति में चले जाते हैं, जैसे गेहूँ का बीज प्रसुप्त अवस्था में चला जाता है। बीज में गेहूँ का पौधा है, एक दिन वह उससे पैदा होकर

बड़ा भी होगा, लेकिन तुम उसे अभी देख नहीं सकते। उस बीज को पीस दोगे तो अपनी रोटी के लिए आटा जरूर मिल जाएगा, लेकिन पौधा दिखलाई नहीं देगा, क्योंकि पौधा अभी प्रसुप्त रूप में केवल एक सम्भावना के रूप में विद्यमान है।

जब उचित समय आता है तो प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान सूक्ष्म और कारण शरीर किसी माँ के गर्भ में प्रवेश करते हैं। वहाँ प्रकृति से संयोग होता है और एक नए मनुष्य का निर्माण शुरू होता है। आत्मा की मृत्यु नहीं होती। अगर तुम गीता के दूसरे अध्याय को ध्यान से पढ़ोगे तो वहाँ यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है। तुम्हें पुनर्जन्म के बौद्ध और जैन सिद्धान्तों का भी अध्ययन करना चाहिए। वास्तव में पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्राचीन यूरोप के ईसाई धर्म में भी प्रचलित था, लेकिन कुछ सदियों बाद इस्तामबुल में ईसाई धर्म की एक महासभा हुई, जिसमें बड़े-बड़े ईसाई पादरी और विद्वान् शामिल हुए। लम्बी-चौड़ी चर्चा हुई जिसमें यह पाया गया कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त चर्च के असूलों के प्रतिकूल था। एक प्रस्ताव पारित करके इस सिद्धान्त को अवैध घोषित कर दिया गया और ईसाई धर्म से हटा दिया गया।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मात्र प्रस्ताव पारित करके खारिज नहीं किया जा सकता। कोई भी धर्म ऐसा नहीं कर सकता। मान लो, आज हिन्दू धर्म के सभी आचार्य, स्वामी और गुरु जन बैठकर ऐसा कोई प्रस्ताव पारित कर भी दें तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लोग इसे एक मूर्खता भरी बात समझेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि पुनर्जन्म होता है। एक बार मैं फ्रांस में एक बहुत बड़ी सभा को सम्बोधित कर रहा था। करीब पाँच हजार लोग रहे होंगे वहाँ। प्रश्नोत्तर के समय किसी ने पूछा, 'क्या आप पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं?' मैंने उस व्यक्ति से ही पूछा, 'पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो, क्या तुम पुनर्जन्म में विश्वास करते हो?' वह बोला, 'नहीं, पहले आप जवाब दीजिये।' मैंने कहा, 'ठीक है। मान लो, मैं कहूँ कि विश्वास नहीं करता।' इतना कहते ही पूरी सभा 'हो! हो!' करके चिल्लाने लगी!

लोग पुनर्जन्म के खिलाफ बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। केवल बुद्धिजीवी वर्ग को छोड़कर, जो हर देश में वैसे भी अल्पसंख्यक है, बाकी सारी जनता—मजदूर, सिपाही, अफसर, नेता—सभी कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। यूरोप में कर्म शब्द आम बोलचाल की भाषा में आ

गया है। किसी आदमी को दु:ख-तकलीफ झेलते देखेंगे तो कहेंगे, 'ओह! यह तो उसका कर्म है।' क्या यह पुनर्जन्म में विश्वास को नहीं दर्शाता? हमें तो पुनर्जन्म के सिद्धांत पर कोई संदेह नहीं, और हमें इसे सिद्ध करने की जरूरत भी नहीं।

एक और उदाहरण देता हूँ। मैं इंग्लैण्ड में आश्रम बनाने के लिए किसी अच्छी जगह की तलाश कर रहा था। स्कॉटलैण्ड में मुझे एक बहुत बढ़िया घर दिखाया गया। दाम भी ज्यादा नहीं था। मैंने लंदन लौटकर अपने परिचितों से कहा, पचीस हजार पाउण्ड में तो बहुत सस्ता मिल रहा है। लेकिन उन्होंने कहा, 'वह भूत-बंगला है!' मैंने पूछा, 'किसका भूत?' उन्होंने कहा, 'घर के मालिक ने वहाँ अपनी पत्नी का खून कर दिया था। उसी की आत्मा वहाँ भटकती है।' मैंने कहा, 'पर आपलोग तो आत्मा और पुनर्जन्म जैसी बातों पर विश्वास नहीं करते। कम-से-कम ईसाई धर्म में तो ऐसी बातों के लिए कोई स्थान नहीं है।' फिर भी उन्होंने कहा, 'नहीं, नहीं। सच में वहाँ भूत है।' जब तुम भूत-प्रेत में विश्वास करते हो, किसी घर को भूत-बंगला मानते हो, तो इसका यही मतलब हुआ कि तुम पुनर्जन्म को भी मानते हो, इस बात को मानते हो कि मृत्यु के बाद भी कोई चीज शेष रह जाती है।

एक सच्ची घटना सुनाता हूँ जो तीस-पैंतीस साल पहले 'रीडर्स डाइजेस्ट' पत्रिका में छपी थी। रूस के किसी शहर में एक आदमी मर गया। उसको दफनाने की तैयारी चल ही रही थी कि वह फिर से जिन्दा हो गया। वह उठकर बैठ गया और स्पेनिश में बात करने लगा। लोगों को लगा कि उसका दिमाग फिर गया है और उसे पागलखाने में भर्ती करा दिया। लेकिन आदमी को मालूम था कि वह पागल नहीं है, उसे कोई मनोरोग नहीं है। वह बार-बार यही कहता कि मैं यहाँ का रहने वाला नहीं हूँ, किसी दूसरे देश का हूँ। लेकिन कोई उसकी बात सुनने को तैयार नहीं था, आखिर वह दूसरी बोली जो बोल रहा था।

एक दिन पागलखाने में वह आदमी अखबार पढ़ रहा था। अखबार में छपी एक खबर के अनुसार अर्जेन्टिना में किसी दिन एक आदमी मरा और थोड़ी देर बाद वह फिर से जिन्दा होकर रूसी भाषा में बात करने लगा। अर्जेन्टिना तो भारत जैसा देश है, रूस की तरह सम्पन्न नहीं है। वहाँ वह आदमी पागलों की तरह इधर-उधर भटक रहा था। खैर आगे तो काफी लम्बी कहानी है, कैसे रूसी आदमी को अर्जेन्टिना के उस शहर ले जाया गया, कैसे उसने वहाँ की सड़कों को, डाकखाने को, सब चीजों को पहचान लिया। जब वह अपने घर पहुँचा तो दूसरे आदमी को देखते ही बोला, 'अरे! वह तो मैं हूँ!' तुरन्त आत्माओं की अदला-बदली हो गई। स्पेनिश वापस स्पेनिश हो गया और रूसी दुबारा रूसी। अब ऐसी घटनाओं को आप कैसे समझा सकते हैं? एक ही सिद्धान्त इन चीजों को समझा सकता है और वह है पुनर्जन्म का सिद्धान्त—आत्मा शरीर के साथ नहीं मरती। *क्रमश:*

—19 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

त्याग का सिद्धान्त

एक बात याद रखो कि कुछ भी तुम्हारा नहीं है। जब तुम दुनिया को अपना समझ कर चलते हो, सम्पत्ति या घर-परिवार को अपना समझ कर चलते हो, बेटा, बेटी, औरत, पति, घर, जमीन, जायदाद, सब अपना मानते हो तब तुम अपने को एक सीमा में बाँध देते हो। और जब तुम कहते हो कि यह सब मेरा नहीं है, पत्नी मेरी नहीं है, बेटा मेरा नहीं है, पैसा मेरा नहीं है, मेरे पास आ गया, मैं रखता हूँ मगर मेरा नहीं है,जब मनुष्य अपनी सारी सम्पत्ति, ज्ञान और भावना को अमानत समझता है, तब उसका ख्याल भगवान पर जाता है। इस बात को याद रखो कि जब पानी बहकर तालाब में जाता है तो कुछ दिन के बाद वह सूख जाता है, सड़ जाता है, क्योंकि वह सीमित है। मगर जब नदी का पानी बहता है, तो बहते ही रहता है। न सूखता है, न सड़ता है।

हमने अपने जीवन में जो कुछ भी प्राप्त किया उसका अपने लिए उपयोग नहीं किया। अब मनुष्य शरीर है, तो रात को छत चाहिये, छत हो गयी। पहले कम उम्र थी तो दो बार खाते थे, अब उम्र ज्यादा है तो एक बार खाते हैं। इसके अलावा बाकी जितनी भी चीजें हैं, सब किसी दूसरे के लिए हैं। चाहे योग का प्रचार करना हो, चाहे अस्पताल बनाना हो, चाहे अनाथालय बनाना हो, चाहे कोई अन्य काम हो। हमने राजकोट के पास एक ट्रस्ट खोल दिया और कहा कि चलाओ इसको, क्या फर्क पड़ता है? ऑस्ट्रेलिया में फार्म हाउस ले लिया, मकान बना दिया, समिति बना दी, आश्रम खुल गये, हर आश्रम की अपनी सम्पत्ति है, प्रिंटिंग प्रेस है, गोशालाएँ हैं। मगर हमको उस सब से क्या मतलब?

कहने का तात्पर्य यह कि दुनिया में प्राप्ति का रहस्य है त्याग। तुम अगर छाया को पकड़ने चलो तो छाया आगे ही भागेगी और तुम पीछे रह जाओगे। क्यों? क्योंकि तुमने सूर्य को पीछे रखा है। जब प्रकाश पीछे रहता है तो छाया आगे रहती है, और जब सूर्य आगे रहता है तो छाया पीछे रहती है। तब तुम जहाँ-जहाँ जाओ, वह तुम्हारे पीछे भागेगी। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। पर सभी लोग छाया के पीछे-पीछे भाग रहे हैं, मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरी बीवी, मेरा घर। सब लोग अपने को लिमिटेड कम्पनी बना देते हैं और बेचारे उसी में फँसे रहते हैं। हजार कमाते हैं तो हजार खर्च हो जाता है, लाख कमाते हैं तो लाख खर्च हो जाता है, दस लाख कमाते हैं तो भी खर्च हो जाता है, कुछ बचता नहीं है। न लखपति का पैसा बचता है, न करोड़पति का। और हम तो दस-दस रुपये जोड़कर सेवा का काम करते गए।

हमारे गुरुजी कहते थे, 'देखो, अगर तुम्हें सरल रास्ता अपनाना है तो वह है छोड़ना। और कठिन रास्ता अपनाना है तो वह है जोड़ना। जोड़ने में बहुत मेहनत लगती है, छोड़ने में मेहनत नहीं पड़ती।' आखिर घर छोड़ने में कितनी मेहनत

लगती है? झट से लंगोटी उठायी और चल दिये। जबकि जोड़ने में बहुत देर लगती है, आदमी बूढ़ा हो जाता है, दाँत टूट जाते हैं। हमारे गुरुजी ने कहा कि तुमको सरल चीज चाहिये तो छोड़ो, और कठिन चीज चाहिये तो जोड़ो।

सन् 1963 में हम त्र्यम्बकेश्वर गये। हमारे इष्टदेव त्र्यम्बकेश्वर महादेव हैं, नासिक के पास। 1963 में जब हमारा मुंगेर जाने का इरादा हुआ, तब पहले हम वहीं गए थे। हमने उनसे एक प्रार्थना की और एक वचन भी दिया। हमने कहा कि 20 साल योग का प्रचार करेंगे। आप हमारी पूरी मदद करो और उसके बाद हम सब छोड़कर आ जायेंगे। फिर हम उससे कोई मतलब नहीं रखेंगे। अब कोई बड़ा-सा भवन बनाए और भगवान से कहे कि बनाने में मदद करो, बाद में मैं छोड़ कर आऊँगा, तो तुम इसे पागलपन समझोगे न! फिर भवन बना ही क्यों रहे हो?

लेकिन हमने भगवान को ऐसा ही वचन दिया। 1963 में वचन दिया, 1983 में छोड़ दिया। पक्का बीस साल। हमें छोड़ने में कोई दिक्कत नहीं है, हम यह जगह भी दस मिनट में छोड़ सकते हैं। हमें अपनी उम्र का ख्याल नहीं है, हम इस उम्र में भी रात को दो-तीन बार नहाते हैं, एक बार खाकर जी सकते हैं, रात को 12 बजे उठ सकते हैं, निर्वस्त्र रह सकते हैं। लेकिन जब तक हम यहाँ बैठे हैं तो आलसी की तरह नहीं बैठेंगे, कुछ-न-कुछ करेंगे जो दूसरों के काम आए। भगवान ने हमसे कहा है कि जब तक तुम ममता में नहीं पड़ोगे, मोहमाया में नहीं पड़ोगे तब तक तुम्हें कोई कुछ नहीं कर सकता। पर जिस दिन हम समझेंगे कि यह सम्पत्ति हमारी है, हम इसका मजा लें, उस दिन हम भी कमजोर पड़ जायेंगे, जैसे सब लोग कमजोर पड़ जाते हैं।

–'रिखियापीठ सत्संग-3' से उद्धृत

जीवन को स्वीकारो

'मा ते व्यथा मा च विमूढभावो'
कुण्ठा, निराशा, व्यथा
जीवन में स्वप्न की झांकियाँ हैं।
जो सफलता के सपने संजोते चले
वे पराजय का भोग करते रहे।
मैंने जीवन को जैसा मिला,
स्वीकारा बाहर से।
तुम भी जीवन को जस का तस स्वीकारो
संघर्ष से प्रगति होती है
किन्तु व्यथाएँ भी विपुलित होती हैं।
योग का मार्ग पकड़ो पहले
तब जीवन का अधिकार पाओ
जिस रास्ते अरबों रोते गये
उस रास्ते कौन हंसते जायेगा,
और कैसे?
तुम या मैं...?

–श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

STOP PRESS

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

***योगा* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

***योगविद्या* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017-2018

दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1–आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2–प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 19-21	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 22	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 22-जून 10	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
अप्रैल 8-14	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 22-28	हठ योग यात्रा 3
अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1 क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।